

रचना प्रकाशन
जयपुर

फटी जेब से एक दिन

सत्यनारायण

मुख्य वितरक :
हंसा प्रकाशन
316, खूँटेटों का रास्ता,
किशनपोल बाजार, जयपुर

मूल्य 30 रुपये

प्रथम संस्करण 1987
प्रकाशक रचना प्रकाशन, 254, शास्त्री सदन
खूंटेटों का रास्ता, किशनपोल बाजार, जयपुर-302 001
मुद्रक : मनुज प्रिन्टर्स, जयपुर

PHATI JEB SE EK DIN
STORIES BY SATYANARAIN

माँ और इन्दु दी के लिए

"मेरी सबसे बड़ी जरूरत थी कि मैं खुद को बचा लूं। मेरे पास कुछ भी नहीं था, न मेरे हाथ में और न मेरी जेब में, मेरे पास केवल मेरा विश्वास और मेरा काम भर था।"

—ज्यां पॉल सार्त्र

क्रम

मुड़े तुड़े चेहरे

बगलों में हाथ दिये टीन शेड के चारों ओर कितने ही चक्कर काट लिये, लेकिन बस अब भी नहीं आ रही थी। बढ़ती हुई ठंड के साथ मेरे हाथ बगलों में और अधिक कसते गये, इक्के-दुक्के लोगों के साथ भीड़ भी बढ़ती जा रही थी। किसी भी 'हॉरन' के साथ लोग चौकन्ने होकर सामने के मोड़ पर निगाहें टिका देते।

सोलह एकम सोलह, सोलह दूना बत्तीस, सोलह तीये""जब वक्त नहीं कट रहा हो और सोचने को भी कुछ नहीं हो तो मैं यह पहाड़ा रटने लगता हूं। बचपन में रटे पहाड़ों में बस यही एक पहाड़ा है जो मुझे अभी तक याद है। निगाहें सामने खड़े व्यक्ति के कोट के बटनों पर टिक जाती हैं। सोलह एकम सोलह....सोलह पंजे अस्सी, कोट के बटन पांच हैं, इसलिए पहाड़े को पूरा करने के लिए बटन ऊपर से दुबारा गिनने लगता हूं।

सड़क पार से आती हुई लड़की को देखकर टीन शेड के नीचे खड़ी एक लड़की 'हाय' कहती हुई उसके कान में जाने क्या फुसफुसाती है कि दोनों जोर से खिलखिला पड़ती हैं.... ...

तभी बस के आने की सुरसुराहट कानों में पड़ते ही भीड़ में फिर सुगबुगाहट होने लगती है। बस के रुकने से पहले ही लोग ऊपर-नीचे लटकने लगते हैं। गिरती-पड़ती अजीब तरह के वस्त्रों में लिपटी हुई आकृतियों की घालमेल से खिंचता हुआ मैं भी अंदर धकेल दिया जाता हूं, तो वहां आड़ी

तिरछी खुसफुस करती सांसों की गरमाहट में सरदी से मुक्ति-सी मिल जाती है।
लेकिन तभी किसी आकृति की बेहद लंबी उबासी के साथ बदबू का एक भभका नथुनों में घुस जाता है।
सोलह एकम सोलह....लड़की के चेहरे को देखते हुए पहाड़ा रटने लगता हूं पर कहीं क्रम नहीं बिठा पा रहा हूं, जिससे पहाड़ा सोलह पर ही अटक कर रह जाता है।
"छींsss ई!" *एक आकरी-सी छींक, साथ ही लड़की रूमाल से नाक* पोंछने लगती है। मन होता है यह इसी कोण से खड़ी रहे और मैं सोलह की जगह उसके चेहरे का पहाड़ा पढ़ता रहूं।
क्रम टूट जाता है। लड़की की जगह एक अधेड़ चेहरा सामने आ जाता है। *जोहड़ के गंदले पानी में पड़े पत्थर से उठते* बुलबुलों की तरह कंडक्टर की सीटी के साथ भीड़ की कुलबुलाहट भी बढ़ जाती है। पर झींगुरों की आवाज-सी अस्पष्ट भीड़ की आवाजें भी कानों में मात्र शोर उपजाकर रह जाती हैं।
लाल सफेद रंग की पट्टियों से पेट की गई यह बस रोज इसी समय आती है। बस में रोज जाने वाले वही चिर-परिचित चेहरे। बिना कोई नाम पता जाने मात्र चेहरों से मैं सबको जानता हूं। शायद वे भी मुझे मेरे चेहरे से अवश्य पहचानते होंगे। हालांकि इस मार्ग पर और भी कई बसें चलती हैं पर *इस समय यही बस चलती है। थोड़ी-सी देर होने पर इन्हीं* चेहरों पर चिंता के भाव प्रकट होने लगते हैं। वे बार-बार खिड़की पर जाकर भी संतुष्ट नहीं होते और आपस में बतलाते हैं कि आज यदि चौवन-चौदह नहीं आयी तो पौने दस वाली बत्तीस बहत्तर में जाना पड़ेगा। दफ्तर में आज फिर देर हो जायेगी। *दफ्तर का ध्यान आते ही बस और भीड़ को भूलकर उनके सामने अपने बॉस का चेहरा तैरने लगता* और तब सुबह की ताजगी के स्थान पर उनका चेहरा लटक कर मुरझा जाता है।

मैं सामने भीड़ पर निगाह दौड़ाता हूं। आज ए.जी. ऑफिस अभी तक नही आया। शायद बीवी को फिर बुखार हो गया होगा।

सचिवालय को आज खिड़की के पास वाली सीट मिल गयी है। इसलिए कान में खोंसी बीड़ी को सुलगाते हुए उसने एक लम्बा-सा कश लिया। कश के साथ आये बलगम को मुंह मे गोल करते हुए एक धक्के के साथ पूरी ताकत से खिड़की के बाहर फेंककर इतमिनान की सांस ली।

छत से लटकते हत्थे पर बायें मे दायां हाथ जाते ही निगाह भी दायी तरफ चली गयी और क्षण भर तय नही कर पाया कि उस्तरे से एकदम साफ किया हुआ यह सिर कलक्ट्री का ही है या और किसी का। शायद बूढ़ी माँ अब नही रही होगी। एक दिन उसे रिक्शा में बिठाकर ले जा रहा था। हाथ मे रोज रहने वाले एक्सरे और दवाइयों की चिटें भी आज उसके पास नहीं हैं।

हरी साड़ी के टिफिन में शायद आज सूखी सब्जी नहीं है। इसीलिए अधिक सावधान की मुद्रा मे टिफिन को एकदम सीधा किये कसकर पकड़े हुए है। पिछले कई दिनों से इसी एक साड़ी में देख रहा हू और अब तो कई जगह से इसके तार भी खुसने लगे हैं।

आकृतियों में हलचल होने लगी है। शायद कोई स्टॉप आ गया। कपड़ों में दबे-ढके लोग आगे सरकते हुए गेट से उतर जाते हैं। दो लड़के मुंह से सीटी बजाते हुए लड़की की तरफ इशारा करके हस रहे है शायद किसी फिल्म का संवाद भी दोहरा रहे हैं।

"प्लीज एक्सक्यूज मी।" मुझसे सटती हुई लड़की आगे निकल जाती है.... और दोनों लड़के भी सरककर मेरे पीछे खड़े हो जाते हैं।

"यार दो दिन हो गये कोई तीतर नही पकड़ा।"

"कल तो पकड़ा ही था।"

"हाँ यार, पर साले में कुछ भी मीट नही था।"

"था तो भारी।" जल्द कह रहा था।

"क्या खाक भारी था । एक तो प्रेमिका का खत था और दूसरा गांव से बाप का आया था कि सख्त बीमार है, जल्दी से रुपया भेजो । सच यार, उसके हरफ पढ़कर एक बारगी तो इच्छा हुई कि मैं ही कहीं से रुपये इकट्ठे करके भेज दूं ।"

पास खड़ा लड़का उसके और समीप आ गया, "प्रेमिका ने क्या लिखा था ?"

खत का मजमून सुनते ही मेरे कान सतर्क हो गये, क्योंकि बस में कल मेरी ही जेब कटी थी । बापू और सुमि के खत के अतिरिक्त चार-पांच रुपये भी थे, जिनके निकल जाने के कारण मुझे पांच-छह किलोमीटर पैदल चलना पड़ा था और शाम को कहीं जुगाड़ न होने से भूखे पेट सोना पड़ा ।

"नही यार, बाप का खत पढते ही मुझे भी साले गाव की याद आ गयी ।" पहले लडके की आवाज गीलेपन के साथ धीमी हो गयी ।

"तू अपनी गाठ से दे आ, ज्यादा ही दया आ रही है तो ।"

"नही यार । अपनी भी क्या जिन्दगानी है साली, कही ठौर-ठिकाना नही । एक पग अन्दर है तो दूसरा बाहर । और अब तो ये पुलसिए भी पीछा नही छोडते । इनको तो कही से भी लाकर दो, बस चौथ चाहिए । साला आदमी करे भी तो क्या ।" उसके चेहरे की बनती-बिगड़ती लकीरें सपाट होकर रह गयी और मुंह पर उग आये शून्य के भाव से वह और अधिक भोला लगने लगा । खिडकी से आयी तीखी हवा की लहर के साथ ही मेरे दात किटकिटा उठे । पहाड़ा मैं कभी का भूल चुका था । उस लड़के के बोलों से मेरे दिल की धड़कन तेज हो गयी । कई बार कई ऐसी चीजें होती है जिनका सामना हम भूलकर भी नही करना चाहते""और यदि किसी बहाने हो भी जाता है तो उसे नकारने की कोशिश करते हैं । इस समय मैं भी यह नही स्वीकार कर पा रहा हूं कि वे खत मेरे ही थे ।

सारे चेहरे ऊपर-नीचे गड्मड् होकर आखो के सामने तैरने लगे हैं और जब-जब उस लड़की के चेहरे का पहाड़ा पढने की कोशिश करता हू, उस पर

माँ का चेहरा चिपक जाता है और खिड़की से परे निगाह दौड़ाता हूं तो बापू की खांसी साथ दौड़ने लगती है। घबराहट में आंखें मूंदकर जोर से भींच लेता हूं।

आवाज करती हुई एक झटके के साथ बस रुकी तो सबके चेहरों पर भयाक्रांत सनसनी फैली हुई थी। दहशत और उत्तेजना से भरे हुए लोग संयत होकर आपस मे बातचीत करने लगे। एक्सीडेंट हुआ है, मैंने अनुमान लगाया और खिड़की से बाहर देखने की कोशिश की""बस के अगले पहिये के नीचे मुड़ी-तुड़ी साइकिल का एक पहिया दिखायी दिया और साथ ही गाढ़ा-गाढ़ा लिसलिसा फैलता हुआ खून भी।

"क्या हुआ?" अपने आगे खड़े व्यक्ति से अपनी बात की पुष्टि के लिए मैंने पूछा।

"मर गया होगा साला, यों ही अंधाधुंध जो चलाते है।" सीट पर से एक आवाज आयी।

"अजी, सचमुच मर गया, वो देखो कैसे गरदन और हाथ-पैर भी नही हिल रहे। साला डाइवर दारू पीकर चला रहा होगा।"
बस में से करीब आधी सवारियां नीचे उतर चुकी थीं। बाकी आधी बस के फिर चलने की आशा मे भीतर ही बैठी थीं उन्हें बस के जल्दी न चलने की चिंता अधिक थी।

"यह दुनियां तो यों ही चलेगी, साले घणे ही मरते रहते हैं एक के मरने से कोई कल सूनी थोड़े ही हो गयी।" तीसरी आवाज आयी तो एक युवक उत्तेजित हो उठा, "ओए मुंह सभालकर बात कर। यहा मौत हो गयी है और तुझे जाने की सूझ रही है?"

उस आकृति की जैसे सांस ही थम गयी। वह स्वयं को संयत करने के लिए बिना कुछ बोले मुंह चुबलाने लगा।

घायल आदमी को एक जीप में अस्पताल ले जाया जा चुका था और

पुलिस का अब तक कहीं नामोनिशान नहीं था। बाकी की भीड़ बस की आशा में कंडक्टर की तरफ मुखातिब होने लगी।

बस के सामने से साइकिल हटा ली गयी, "अरे भाई, अब चलो, तुम्हारी भी क्या गलती, जो होनी थी सो हो गयी। होनी को कौन टाल सकता है।" एक अधेड चेहरे ने सहमे डाईवर की तरफ देखते हुए कहा। ड्राईवर ने भीड पर उचटती सी निगाह डाली और जाकर सीट पर बैठ गया। नीचे खडे लोग धकमपेल करने लगे।

"अरे भाई! दफ्तर मे देर हो रही है, तू तो जल्दी से ठिकाने पहुँचा।" और वह इस तरह हंसने लगा जैसे डाईवर का खून माफ कर दिया हो। अजमेरी गेट से विश्वविद्यालय के लिए मुझे दूसरी बस पकडनी थी। वहा जाकर देखा तो अजीब–सा तहलका मचा हुआ था। दो चार मरियल से लडके एक घेरे में खड़े खिलखिला रहे थे। उनके पास ही एक अधेड़ से सज्जन बगलों मे हाथ दिये सड़क पर आती–जाती भीड़ को ताक रहे थे। मैंने उनकी एकाग्रता भंग करते हुए पूछा, "क्यों साहब, बस क्यों नहीं आ रही? क्या कहीं कोई झगड़ा–वगड़ा हो गया?"

"झगड़ा–वगडा? अजी साहब चाकू–छुरे चल गये, बस जला दी गयी।"
"क्या हुआ?" मैंने उत्सुकता जाहिर की।

"अजी साहब, होणा क्या, छोरों ने बेचारे कडक्टर-ड्राईवर को मारा-पीटा कोई टिकट–विकट का चक्कर था।"

"किसी को ज्यादा तो नहीं लगी?"

"एक बेचारे की तो टांग ही टूट गयी और दूसरे की हालत गंभीर है। अब तो बस की उम्मीद करना ही बेकार है।" टिप्पणी जड़कर वे दूसरी तरफ मुखातिब हो गये।

विश्वविद्यालय मे आज काफी हलचल नजर आ रही थी। लड़के घेरे बनाकर आपस में कुछ बतला रहे थे। एक महीने पश्चात् चुनाव हैं, पर

उसकी सरगर्मी अभी से प्रारंभ हो गयी थी । मुख्य द्वार के पास ही किसी नयी अंग्रेजी फिल्म का पोस्टर लगा हुआ था, जिसमें नायिका के ऊपरी जिस्म पर नायक झुका हुआ था और ठीक नीचे मोटे-मोटे हरफों मे 'मैक्स' लिखा था ।

विभाग मे आकर एक गिलास पानी पीने के बाद मैं वहीं सुस्ताने बैठ गया । थोडी देर बाद खड़े होकर एक लम्बी जम्हाई ली तो सामने ही डॉ. आशुतोष दिखायी पड़े । उन्हें नमस्कार कर बाहर आ गया । सुना है, इन्हें पीएच. डी. की उपाधि मिल गयी । इनके मामाजी यही प्रोफेसर हैं, उन्होंने अपनी किसी शोध छात्रा से थीसिस लिखवाकर इनके नाम से प्रस्तुत कर दी और यहीं प्राध्यापक भी बनवा दिया, जबकि इनसे सीनियर कई डॉक्टर बैठे हुए है ।

"हैलो, गिरीष !" घूमकर देखा तो मिस रीता थी । किसी समय गौरवर्ण रहा होगा, पर अब तो पिलियामें चेहरे के साथ आंखो के नीचे स्याह धब्बे और गहराते जा रहे है । पाच साल हो गयी इन्हे शोध करते, पर निदेशक महोदय की मेहरबानी अभी तक नही हुई । प्रथम श्रेणी के बावजूद अभी तक कहीं प्राध्यापकी में भी नम्बर नही आया । कनु कहा करता है, "यार, साला यह भी क्या शोध है कि सारा सत निचुड जाता है और फिर यूनिवर्सिटी के प्रोफेसरों की यह घेराबंदी जिसमें उनके निखट्टू बेटे-बेटियो के अतिरिक्त कोई नही जा सकता ।"

"कैसा चल रहा है आपका शोध कार्य ?" मैंने औपचारिकतावश रीता से पूछा :

"बस ठीक, खत्म हुआ ही समझो ।" हर बार यही उत्तर होता है, जिसे मैं पिछले दो साल से सुनता आ रहा हूं ।

"अच्छा तो ..."कहकर मैं आगे बढ़ गया । तेज चलने के कारण ऐसी सरदी मे भी पसीना आ गया । माथे के पसीने की बूंदों को अंगूठे के पास वाली अंगुली से सूंतते हुए सोचा कि एक कप चाय पी ली जाये और पोस्ट आफिस की सीढ़ियां उतरकर कैंटीन की तरफ चल दिया ।

कैंटीन में कोने की टेबिल पर पहले से ही कनु बैठा था। सिगरेट के लंबे कश के साथ धुआं छोड़ते हुए उसकी निगाहें छत पर टिकी हुई थीं और सामने रखे चाय के प्याले मे चाय की पपड़ी पर दो–तीन मक्खियां तैर रही थी।

"चाय पिओ।" उसने कहा और अपनी चाय की तरफ देखते हुए हंसकर बैरे को दो चाय लाने के लिए आवाज दी। तभी तड़ाक–तड टीन की फोल्डिंग कुर्सियों और टेबिलों की उठापटक की आवाज सुनायी दी। चाय पीती लड़कियो में घबराहट और दहशत व्याप गयी। डरी-सहमी वे चाय के प्याले लिये खड़ी हो गयी और बाहर चली गयी।

"क्या हुआ ?" उत्सुकतावश कनु और मैं खड़े हो गये।

धींगामस्ती अब भी चल रही थी।

"ले साले और ले पैसे !" और इसी के साथ दो तीन लड़कों के हाथ कॅंटीन–मालिक पर पड रहे थे। बैरे दूर खड़े सहमे-सहमे देख रहे थे। "क्या हुआ ?" तब तक मैं लड़को के पास जा चुका था। कैंटीनवाला डर के मारे चिल्ला रहा था, "नही साहब, आप कुछ भी मत देना, अब कभी पैसे नही मांगूगा।"

"नही साले, ले और ले… हमी से पैसे मागता है, बाप से भी कभी पैसे मागे जाते हैं ?" उनके हाथ अनवरत चल रहे थे और वह कभी दाये तो कभी बाये मुड़ा–तुडा होकर अपने हाथों से उनका वार रोकने का निष्फल प्रयास कर रहा था।

किंकर्तव्यविमूढ़–सा दांतों को कड़कड़ी भींचता हुआ मैं अब भी लड़कों की तरफ देख रहा था।

इस बार एक लम्बी चीख के साथ याचना भरी दृष्टि से कैंटीन वाले ने भीड की तरफ देखा। मेरे भीतर कुछ कुलबुला रहा था, और कनु के मना करने के बावजूद मेरी मुट्ठियां भिचती गयी।

"छोड़ दो इसे, क्यों मार रहे हो ?"

एक बार मुझे गंवई गाव का अपना वह [illegible] आया, जब मैं [illegible] में पलक झपकते ही अपने प्रतिद्वंद्वी को लंगड़ी मारकर गिरा देता था लेकिन शहर मे आने के पश्चात् भीतर ही भीतर भरता गया एक कायरपन !

दोनों हाथ फैलाकर मैंने उन छोकरों को रोकना चाहा, लेकिन वे थे कि बुरी तरह उन पर पिल रहे थे । अपने शरीर को बीच में से मोड़कर मैंने नवें वाले लड़के के पेट मे मारना चाहा जो अपने हाथ से कैंटीनवाले की कमीज की कालर पकड़े हुए था ···लेकिन पीछे से दूसरे लड़के ने कमर मे ऐसा हाथ मारा कि गश-खाकर मैं वहीं बैठ गया ।

तब तक और भी कई लड़के आ चुके थे । पर सब चुप खड़े देख रहे थे । कोई कुछ नहीं बोल रहा था ।

"जल्दी से पुलिस को बुलाओ ।" एक आवाज आयी ।

पुलिस की सुनकर लड़कों का उत्साह ठंडा पड़ने लगा । अब वे वहां से जल्दी से जल्दी खिसक जाना चाहते थे । धकम-धुक्कों के बीच मेरी हंफनी बढ़ गयी और एक तरफ से फटी हुई कमीज नीचे लटक आयी । अपने दोनों हाथ मुंह पर फेरते हुए आंखो के सामने ले जाकर देखा—खून की एक दो बूंद चुहचुहा आयी थी । एक लम्बी सांस ली तो शरीर पीड़ा से दोहरा हो गया ।

बाहर लॉन में आकर सीधा खड़ा हुआ तो चेहरे पर पीड़ा की लकीरें खिच गयी । घर की तरफ जाने वाली सड़क पर चलते हुए मुझे लग रहा था कि इन हजार-हजार लोगों के बीच मेरा अस्तित्व एक मुड़े-तुड़े रद्दी के टुकड़े से अधिक नहीं है ।

कहां तक जाती है सड़क ?

मोटर के इंजन का खुला हुआ बोनट""उस पर झुका हुआ हरि—नीचे सरक आयी कमीज की बाह को मोड़कर नाक के पानी को ऊपर खींच रहा है सड़ सड ।

थरथराती ठण्डी शाम""तीखी हवा का झोंका" रबर की नली से फूक देकर ऊपर खींचता है तो मुंह मे भर जाता है आइल""करता है फू फू"" देता है गाली""आइल की बून्दे चली जाती है भीतर""मिचला उठता है जी""आती है उल्टी सी, पर चलता रहता है हाथ""फिरता रहता है कपड़ा मशीन पर ।

"ओ भेण के पठ्ठे जल्दीकर, पहुंचणा है अहमदाबाद दो दिन मे ।" आती है आवाज उस्ताद की ।

हरि का दुखता है पूरा जिस्म" अकड़ जाती है पीठ""नाक से बहता रहता है पानी और भीतर ही भीतर मरता रहता है कुछ । आंखो के सामने घूमती रहती है मां" दारू पीता बाप और बिल बिलाते छोटे भाई बहन । "हा तो पठ्ठे हो जाए दो चार गुटकी देसी की ।" डर जाता है वह ठहाका लगाता है उस्ताद । "कोई बात नही सब ठीक हो जाओगे ।" थोडी देर बाद फिर घरघराता है इंजन—दबता है पैर से क्लच—हाथों में कसमसाता है स्टीयरिंग""बढ़ती जाती हैं सुई""तीस-चालीस-पचास-साठ-

सत्तर-अ""मीच लेता है आंखें वह टकराता है सिर शीशे से""गाली देता है उस्ताद और फटे हुए कम्बल मे दुबककर रह जाता है वह।
एकदम सूनी सड़क-भूत से खड़े पेड़ों के लम्बे पसरते साये"" ऊंघते गांव"" सोती ढाणियां और सपने देखते शहर-गुजरते जाते हैं एक एक कर।
डूबते उतराते रहते है उसके भीतर पके अधपके सपने, झंपती हैं आंखें"" चौकन्ने खड़े हुए हैं कान' गुजर जाता है तभी बीच सडक से एक मखमल सा फाहा"" चरमराते है ब्रेक"" निकल जाती है चीख हरि के मुंह से और हंसकर टरक रोक देता है उस्ताद। "कभी खाया है खरगोश का मीट ? इसका मज्जा ही और है। बकरे का साला हाड चावते रहो और इसका ? फेरता है जीभ होठों पर"" लेता है स्वाद मन ही मन"" रुकता है टरक""चल देता है फिर टरक। फिर वही सूंसाट की आवाज""वही हवा की गति। रुकता है फिर शहर के बाहर-ढाबे के पास। जहां बिछी हैं खाटें और खाटें ' उन पर पसरी है लुंगिया और लुंगिया" पसवाड़ा बदलते चूतड़""डकारते पेट"" डरेवर और डरेवर"" गिलास और गिलास " दारू और दारू।

"वाह क्या चिकन लौण्डा है। "हंसता हैं एक डरेवर' मारता है आंखें उस्ताद की तरफ" लगता है फिर ठहाका फिर ठहाका। समझ नही पाता है वह कुछ सिकुड़कर रह जाता है अपने में""ऊपर खींचता है नाक का रींट। पानी की बालटी डालता है इंजन में। एक खाट पर फैला देता है पांव उस्ताद" फिरने लगते है उसके हाथ ऊपर नीचे""दबने लगते हैं उस्ताद के हाथ और पैर और चुभने लगती है सुईयां उसके भीतर। उगने लगता है सफेद मखमल सा सपना। झंपने लगती हैं आखे""ढीले पड़ जाते हैं हाथ""गाली देता है उस्ताद और मारता है एक लात।

सुस्ताने के बाद फिर घूम रहा है स्टीयरिंग-चल रहा है टरक""पीछे छूटते जा रहे है पेड़-गाव-ढाणियां और शहर। तभी होरन और होरन एक लम्बी कतार"" टरक और टरक""शायद फिर कोई एक्सीडेण्ट हो गया

है ।" बुदबुदाता है उस्ताद''' जोड़ता है हाथ हनुमान जी की तस्वीर के सामने । धीरे-धीरे रेंगती है कतार''''बजते हैं होरन '' साइड लेते-साइड देते नेज और तेज''''दौड़ रहे हैं टरक '' सड़क की छाती पर ।

फिर पडी है एक कुचली हुई लाश''''चारों तरफ फैला '' पसरा हुआ है एक लिसलिसा द्रव । चक्कर काट रहा है एक कुत्ता चारो तरफ '' उड रहे हैं दो चार चील कांवले और दौड़ती टरकें निकल जाती है होरन बजाते हुए । किसी को होश नही '''फुरसत नही किसी को । घिर रहे हैं बादल '' चारों तरफ बढ रहा है अन्धेरा ' पड़ने लगती है बून्दें''' तेज और तेज और शीशे पर फिरने लगता है वाइपर । फट क्यों नही जाते बादल-डूब क्यो नही जाता सब कुछ पानी मे, सोचता है हरि । बढता जाता है पानी '' बून्दें और बून्दें ' याद आ जाती है मा '' कुक्क और घुटनो चलती रामी । झू पे में चू रहा होगा पानी सोचता है वह सिलवर के कटोरे से बाहर उलीच रही होगी मा''' हाथ बंटा रहा होगा कुक्कू''''गोलिया दे रहा होगा बाप और पानी में छप छप कर रही होगी रामी अब तो मा मां भी करने लगी हैं '' उसे देखकर किलकती भी है, गोद में चढ़ने पर उतरती नही है''''कही बीमार नही हो जाए ऐसी बरसात मे '' घबरा उठता है वह । आंखे मून्दता है तो आ जाती है मा फिर खोलता है ''' फिर मू दता है तो आ जाता है कुक्कू फिर बापू''''रामी ' अब नही मू दता है आंखे''''बढता जाता है टरक''''छूटता जाता है पीछे सब कुछ । फिर सुबह''''ढावे पर रुकता है टरक '''पीता है चाय उस्ताद '' पीता है वह, डालता है इंजन में पानी । पोंछता है आखो का चीपड, धोता है मुंह '' सुन्न पड़ जाती है अंगुलियां बहता रहता है नाक से रीट एक घूट मे सुडक लेता है चाय । दौड रहे है सड़क पर आवारा छोकरे '' एक उसकी तरफ निकर के बटन खोलकर दिखाता है कुछ ' खिलखिलाते हैं दूसरे '''फिर भाग जाते है सारे । सडक के उस तरफ खड़ी है एक लड़की '' पांवों के पास पड़ा है लकड़ियों का गठ्ठर''''देखती है वह इधर उधर जुटाती है साहस और फिर देती है आवाज ''''डरेवर जी '''ओ डरेवर

जी" आसपास देखता है वह मिलती है आंखें उससे""कहती है फिर वह " ओ डलेवर जी गट्ठर सिर पर रखवा दो।" अच्छा लगता है उसे पास जाकर रखवा देता है गट्ठर भली लगती है लड़की भीतर होता रहता है कुछ ""जाता हुआ देखता रहता है लड़की को वह दूर बहुत दूर तक। फिर एक खिलखिलाहट " चौंककर देखता है वह सडक पार कर रहा है छोरे छोरियों का एक झुण्ड " गले में किताबों का झोला""एक सी पोशाक साफ सफेद चमकती कमीज और नीली नेकर चिकने-चुपड़े गोरे चेहरे""सफेद मखमल सी हंसी ""दुमक उठता है वह"" देखता है फिर एक सपना""उड़ने लगता है फिर उनके साथ दूर बहुत दूर तक। लेकिन तभी रेंगने लगते हैं उस्ताद की गलियों के चीटे। नजर जाती है अपनी मैली चीकट कमीज पर। नथुनों में घुलती जाती है ग्राइल की बू-उठता रहता है एक धुआं""धुएं के ऊपर धुआं-आंखें मलकर देखता है वह, कहां गये सफेद मखमली सपने।

"ऐ इधर आ " , सरिये से सारे टायर बजा के देख कहीं हवा तो कम नहीं हो गयी है""पंचर तो नही हो गया है फिर पीछे से तिरपाल देख-कहीं से ढीला तो नही हो गया है और सीट के नीचे से कपड़ा निकाल कर सीट और सामने के शीशों को साफ करले तब तक मैं निबटकर आता हूं।" आवाज देता है उस्ताद। देखता है वह टायर बान्धता है""तिरपाल निकालता है कपडा सीट के नीचे से""साफ सुथरी एक पुरानी सी साड़ी " जिसे खरीदा था उस्ताद ने शहर के फुटपाथ से पाच रुपये में। फैलाकर उसे लगता है फाड़ने ""रुक जाते है अचानक उसके हाथ " आंखों के सामने तैरने लगती है मा की लूगडी छनछनी""पैबन्द लगी हुई"" दुखों की चिप्पियां जगह जगह""उसी की काया सी पीली सोचता है वह-यह तो मां की लूगड़ी से भी नया है उससे भी बड़ा मां के लिए रख लेनी चाहिए " सोचता है फिर " फिर सोचता है वह " रुके रहते हैं हाथ ""रुकी रहती है आंखें फिर घुमाता है आखें उस्ताद की तरफ"" हाथों के बीच से चिरती जाती है साड़ी उसके भीतर भी चिरता जाता

है सब कुछ लगातार""आखों में तैरता रहता है गीलापन और फिर शीशे पर अटकी बून्दों से गीला होना रहता है वह कपड़ा भी।
कितनी जल्दी बीत गये वे दिन। जब उसने एक ढाबे में नौकरी की थी। कप-प्लेट टूटने से हटा दिया वहां से। फिर बापू का दारु पीकर गालिया देना""मां का रोते रहना और खेतों में सिला बीनकर सबका पेट पालना ""बापू की मार सहना""गालिया खाना। मा की घुटन" उसकी छटपटा–हट। उसने उस्ताद के हाथ जोड़े–पांव पकड़े""रख लिया उन्होंने अपने टरक पर खलासी हो गया वह, क्लीनर। फिर उस्ताद की गलिया " दारू पीकर बयफेली करना"" डर जाता वह""रोता" गिड़गिड़ाता "" हाथ जोड़ता"" मुड़ जाता तब टरक बाईपास डेरो की तरफ टरक रोक-कर उस्ताद लगा लेता बोतल मुंह से""कापता रहता वह""तभी खिल-खिलाती आवाज आती""जनानी""पान से रगे होंठ" बदबू का झोंका उसके मुंह से भी ' "उस्ताद छोकरा ? "सवालिया नजरों से देखती वह उसकी तरफ। हस देता उस्ताद" उठने लगी है क्या रे तेरी भी ?" फिर एक हसी "चल उधर डाले मे चला जा""मैं आवाज दूं तब आना।" और घुम जाते हैं दोनो केबिन मे""आती रहती है घुस-फुस की आवाजें खिलखिलाहटों के बीच सिसकारी और बजने लगती है उसके भीतर भी जाने कैसी कैसी आवाजे"" दे लेता गोड़ों मे माथा और पड़ जाता एक कोने में।
गुजर जाती है रात–बीत जाता है सपना-गुजर जाता है दिन" फिर वही रात-वही सपना-वही दिन-वही उस्ताद, और वही उसकी गलियां। क्यों नही बदल जाता है सब कुछ-क्यो नही हो जाता है उलट फेर""सोचता है वह बार बार" लगातार। फिर दौड़ता है टरक""फिर कुचरा जाता है कोई सपना फिर चीखता है वह"" हांफता है, पसीना पौछता है और घबरा कर आखे मूंद लेता है। "हरिया ओ हरिया के बच्चे उठ""खोल तिरपाल के जेवड़े ' डाल इजन में पानी""आ गया है अहमदाबाद"" दो घण्टे मे खाली होना होना है टरक""तब तक रह तू यही-मैं आया कुछ

बन्दोबस्त कर।" खोल देता है वह तिरपाल, खाली होने लगता है टरक और देखता है वह झुण्ड के झुण्ड सफेद मखमली सपने चले जा रहे हैं उसकी बगल से""हूक उठती है उसके भीतर" देता है गाली उस्ताद को""लगता है वह एक राक्षस सा""बढ़ती आ रही है जिसकी अंगुलियां गले की तरफ" उठती है एक चीख और दब जाती है भीतर ही कहीं"" मर जाता है सपना और पोंछ लेता है आंखें।

कब खाली हो गया टरक""कब आ गया उस्ताद""उसे कुछ मालूम नहीं ""दर्द कर रहा था पूरा जिस्म। फिर रुक गया था टरक""दब रहा था क्लच" घूम रहा था स्टीयरिंग और बज रहा था होरन" चौतरफ मोबिल आइल की गन्ध" काले कीच डीजल के कपड़े" सीट से सिर टिकाकर लुढ़क गया वह। ऊंघता रहा वह""चलता रहा टरक""गुजरते रहे दिन""गुजरती रही रात। दबाने लगा था वह भी क्लच"" घुमाने लगा था स्टीयरिंग" पर उग रहे थे सपने""बढ़ रहा था दर्द""नहीं रहा था बापू""तार तार हो रही थी मा और ढाबे से जब भी गुजरता टरक"" दिख जाती वही गट्ठर ऊंचने वाली लड़की" गुजर जाते वही मखमली सपने और मरता रहता उसके भीतर कुछ कुछ। हांफकर मूंद लेता आंखें ""उस्ताद की जगह नजर आने लगता फिर राक्षस" कस जाती मुट्ठियां उस्ताद के गले चौतरफ" बढ़ता जाता रोम रोम में दर्द" बढ़ जाती"" हंफनी कांपने लगती काया और निचुड़ता रहता सब कुछ।

नटनियों के अड्डे के सामने रोक देता है उस्ताद टरक" सामने नजर आ रही है ढिबरियों से टिमटिमाहट" चिल्लाता है उस्ताद दूर से "उल्फत ओ उल्फत, आ गया है देख तेरा यार।" बजाता है होरन और होरन और होरन। झोंपड़ी के बाहर खांसता है एक बुड्ढा और लगता है हांफने""अरे, इग्यारसी-मेरा पव्वा" "अटक जाते हैं शब्द" आ जाती है खांसी" हंसता है उस्ताद और कहता है""साले डोकरे को बुढ़ापा भिड़का है" पांव कबर में लटके हैं पण चाहिए दारू" डोकरे क्या याद

रखेगा तू भी असली केसर कस्तूरी है असली।" लपक लेता है डोकरा-फैल जाती है आखे ˙ तैरता रहता है एक सुरग बोतल के चौतरफ ˙ खो जाते हैं शब्द रह जाती है उनकी खनक ˙ डूबते उतराते हैं कई चेहरे ˙˙ लिथड जाता है समूचा परिवेश।

अन्दर जाता है उस्ताद˙˙˙ अन्दर चली जाती है उल्फत˙˙˙ भिड जाते हैं किवाड ˙˙ जाती है चिड़िया सहमी सी ˙˙ खो जाती है आवाज उसके उड़ने के साथ ही।

आवाज के पीछे लपक रहा है वह ˙˙ पर जंगल में लोप हो जाती है आवाज चिडिया की˙˙˙ सुनाई नही देती है अपनी सांसे ˙˙ आ जाता है पसीना ˙˙ चिपक जाता है तालू सूख जाता है थूक।

चढ रहा है अछोर आकाश की तरफ वह कही नही है सीढ़ी ˙ कोई नहीं है आधार ˙ चढता है गिर जाता है, फिर चढता है ˙ कही नही है छोर˙˙˙ घिर गया है जंगल मे अजब से शोर के बीच चौतरफ कांटो की नंगी बाड़ ˙˙˙ बूढ़ी खासती आवाजें, उल्फत की भरी हुई सासें रिसते हुए घाव ˙ कुलबुलाते उस्ताद। आंख उठाकर देखता है वह˙˙˙˙चारों तरफ खड़े है टरक और टरक˙˙˙˙लुगिया और लुगियां—दारू की बास और बास ˙˙ मडरा रही है काली छाया˙˙˙ रेंग रहा है तीखे धारदार पजों के साथ राक्षस˙˙˙˙जीभ लपलपाते दौड रहे हैं खूंखार जिनावर।

आखे जंप रही हैं हरि की˙˙˙˙उभर आते है रह रहकर उनमे सफेन गीड—पौछता है˙˙˙˙फिर पौंछता है और फिर पौछता है कुछ नही सूझता है डोकरे को बोतल के अलावा ˙ काया के दिख रहे है हाड़ एक एक ˙ मिच रही है आखे ˙˙ हिल रहा है समूचा शरीर ˙˙ हो गया है वह बेसबूरा—लगा देता है मुंह बोतल के—आ जाते हैं झाग—फूटते है बुलबुले फड़फड़ाते हैं होठ—फूटती है गालियां और गालिया—रो रहा है अब डोकरा—रो रहे हैं कुत्ते—रो रही है रात, पर फिर भी कही कुछ नही रेंगता—बन्द हे झोंपडियां—सूने है स्टीयरिंग व्हील—ठण्डे हो रहे इंजन—कही कोई नहीं

दिख रहा है मानुस जात । कहाँ चली जाती है आकृतियाँ ? लोप क्यों होती जाती है पहचान ? खड़ा रहता है आदमी... देखता रहता है आदमी मरता रहता है सब कुछ होले होले ।
भौचक रह जाता है हरि ... पिछाण खो देती है आंखें ... भिंच जाते हैं होंठ ... अकड़ जाते हैं जबड़े ... ठण्डा पड़ता जाता है शरीर । तड़फ रहा है डोकरा खाटली में ... उठ रहे हैं मरोड़ काया में ... फड़फड़ा रहे हैं होंठ ... पर नहीं फूटते हैं बोल—छूट जाती है बोतल हाथ से ... बिखर जाती है लार मुंह से जमीन तक · निकल जाती है आंखें । कांप जाता है हरि ... तैर आता है दुख आंखों में ... निचुड़ जाता है हिया ... दुख और दुख ... काया के हो जाते हैं और छोर ... मुन्द जाती है आंखें अपने आप ... झकझोर कर हिला देता है वह बुड्ढे को ... "बाबा ओ बाबा ... लो पानी की घूंट पी लो दो चार ।"

मसलता है पीठ ... टटोलता है माथा ... दो बून्द चुआता है कंठ में । अकड़ जाती है काया डोकरे की ... मुंह में भर जाते हैं झाग ... झर जाते हैं अन्द ... लटक जाती है गरदन एक लम्बी हिचकी के साथ । रो देता है हरि ... देता है गाली उस्ताद को ... मां भैण करता है उल्फत की । भींच लेता है माथा । खुद को मारता है थप्पड़ अपने गाल पर ... सब कुछ उलट-फेर करने को थर्राती है समूची काया ... पर बदल जाता है सारा गुस्सा दुख में ... बहुत बड़े दुख में ... पिघलता रहता है शरीर आंखों से ... झोंपड़ी से आती है आवाज खिलखिलाहट की ... बदल जाती है फिर सिसकारी में....
फिर खिलखिलाहट में ... फिर सिसकारी में ... तैरते रहते हैं काली रोशनी के धब्बे ।

"उस्ताद ओ उस्ताद जी ... उल्फत ओ उल्फत ... देखो बाबा को जाने क्या हो गया है ।" झिंझोड़ रहा है किवाड़ ... बोल रहा है ऊंची आवाज में । पर कहीं कोई आवाज नहीं आ रही है ... लौट आती है टकराकर किवाड़ों से ... कहीं कुछ नहीं रेंगता है । फिर खिलखिलाहट ... फिर हंसी ... फिर

हंसता है उस्ताद। "चलो कलेश कटा, बुढ़ापे में दारू की लत लग गयी थी, कोई कितने भरणे मरे।" कहकर राहत की सांस लेती है उल्फत। पर चिरता जाता है हरि के भीतर कुछ""मरोड़ उठते हैं पेट में"" टूक टूक हो जाते हैं माथे के ""मर जाते हैं सपने""खिर जाते हैं खरगोश के मखमली पर " रुल जाते हैं आगत के पांव, ठहर जाता है सब कुछ—थिर हो जाती है धरती।

देख रहा है और देख रहा है हरि। खड़े हैं टरक " फैली है झोपड़िया"" पसरी है खिलखिलाहट। वह देख रहा है पर नहीं देख रहा है""सोच रहा है पर नहीं सोच रहा है। उसे लगा हाथ से फिसल रहा है सब कुछ, समय के अतिरिक्त। समय वहीं क्यों है? पल रुके हुए क्यों है? सब कुछ उसके भीतर ही भीतर क्यों घट रहा है? बाहर क्यों नहीं घटता? सब कुछ रेंग क्यों रहा है? दौड़ता क्यों नहीं? वह पहुंच जाता है धब्बों से परे"" वह पहुंच जाता है आकारों से परे " खिलखिलाहटों से परे""सिसकारियों से परे""जहां से उसे सभी बौने नजर आते हैं। अपने आकारों में सिकुड़ते हुए एकदम का पुरुष " एकदम नपुंसक।

हरि के हाथों में है स्टीयरिंग व्हील""क्लच पर है पाव""काया तनी हुई है एकदम सीधी। उसे रौंधना है सबको ""चढा देना है टरक एक एक पर " शोर निरन्तर शोर। खो देनी है अपनी आवाज इस शोर में। सोने नहीं देना है इस क्षण को " सोने नहीं देना है किसी को भी""रोकनी नहीं है टांगें। मूंद लेता है वह आंखें " दबा देता है क्लच " घुमा देता है स्टीयरिंग व्हील। कहीं कोई नहीं रुक रहा है"" न वह ""न टरक"" न शोर। "देखें कहां तक जाती है सड़क।" बड़बड़ाता है वह।

□

फटी जेब से एक दिन

जब मेरी आंख खुली वह बक्त से बेखबर ठुड्ढी पर कलम टिकाए सोच की गंभीर मुद्रा मे बैठा था।

मैंने दायां हाथ बढ़ाकर घड़ी देखी, सात बज चुके थे। टेबिल लैम्प अभी भी जल रहा था। बण्डल से बीड़ी निकालकर, होठों में थामते हुए मैंने असित से पूछा—"कहो महाशय। कहानी लिख ली?"

"कहां यार, रात से सोच रहा हूं, पर कहानी की शुरूआत नहीं हो रही है और कहानी की शुरूआत इस बात से करनी है कि रात हो चुकी है और.... ।"

बस बस""""""बीड़ी का लम्बा कश खीचकर उसमें घुंआते हुए मैंने कहा—"साले क्यों अपने को बरबाद कर रहा है। पढ़कर अच्छे नम्बर ला और कहीं ढंग की सर्विस"""।"

सुबह सुबह उपदेश मत झाड़ो। तुमने कौनसा तीर मार लिया फस्र्ट डिवीजन लाकर और फिर देखता हूं कब बनते हो आई. ए. एस, यों ही मर जाओगे एक दिन सड़ते हुए।"

रहने दे बहुत हो गया। खड़ा हो चाय पीने चलें।" मैंने बात को वहीं खत्म करने के अंदाज में कहा।

यार, कल ही होटल वाला बड़बड़ा रहा था कि खूब रुपये हो गये पहले उन्हें चुकाओ।" उसकी आवाज कुछ ठण्डी और लटकी हुई थी।

तो साले के खाकर थोड़े ही मर रहे है। दे देंगे होंगे तब।" घसीटता हुआ मैं उसको चाय की होटल तक ले आया था। चाय पीकर कमरे पर आये तब तक साढ़े आठ बज चुके थे। मैं आते ही फिर बिस्तर मे पड़ गया। असित नहा धो चुका था। "तुम भी चल रहे हो ना विश्वविद्यालय? चलना है तो जल्दी तैयार हो जाओ।" अपनी फाईल संभालते हुए वह बोला।

बस बेटे, रोज नहा धोकर तैयार होओ और जाओ युनिवर्सिटी।

तुम्हें चलना है तो बात करो, नही तो यही पड़े सड़ते रहो।

सिगरेट पिलाए तो बस स्टेण्ड तक चल सकता हूं।"

सीधे यह कहो कि वहां छोरियां को टापना है।

क्या हुआ तो उन्हे भी टाप लेंगे।" मैंने कहा।

बस के आते ही असित युनिवर्सिटी चला गया और मैं सिगरेट पीता हुआ सीधा कमरे की मांद में आकर पड़ गया। जबकि मुझे इस कमरे और उसकी एक एक चीज से घृणा थी। मैं नही चाहता था कि उसकी चीजो से सावना पड़े। वे मुझे हमेशा दांत निकाले घूरती हुई सी लगती। मैं उनसे बचने के लिये चादर ओढ़कर अपने को सबसे परे कर लेता, और तब तक किये रहता जब तक कि असित विश्वविद्यालय से नही लौट आता? इस बीच बाहर सिर्फ चाय पीने और एकाध कचोरी–समोसे खाने निकलता क्योंकि खाने के नाम पर बस यही चीजे उधार मिल सकती थी। कई बार दिनो तक खाने की जगह इन्ही से काम चलाना पड़ता।

मुझे एम. ए. किये साल भर हो चुका था। असित एम. ए. फाइनल मे था। विश्वविद्यालय मे उसकी प्रेमिका थी। वह रोज उसके लिए फूल लाती थी जो दिनों तक मुड़े–तुड़े उसकी जेबों मे इकठ्ठे होते रहते। फूल

लेते ही वह हंस दिया करता । क्योंकि उस समय उसे फूल की नहीं रोटी की जरूरत होती और तब वह उसे चाय के लिए कहता और चाय के साथ तली हुई स्लाईस भी । इस तरह दो बजे तक केण्टीन में बैठे गप्पे हांकता रहता । फिर—"अरे, बैंक भी जाना था । अब तो बन्द हो चुका होगा । चलो आज के पैसे तुम्हीं चुकाओ ।"

इस तरह जेब की अठन्नी शाम के लिए सुरक्षित रख लेता । अक्सर ऐसा होता और उसकी प्रेमिका सब कुछ जानते हुई भी अनजान बनी रहती ।

यह उसके भूख और प्रेम के दिन थे और मेरे बेरोजगारी और भूख के ।

हम दो थे । एक एम. ए. कर चुका था, एक कर रहा था । काम की तलाश दोनों को थी, पर काम नहीं मिल रहा था । अपना पेट नहीं भर पा रहे थे, मकान का किराया नहीं दे पा रहे थे ।

असित साहित्यिक गोष्ठियों मे बराबर जाता । मैं नहीं । मैं जानता था, वे सब धाये हुए लोग है और ओगालने के लिये वहा आते हैं । मुझे इसी बात से उन लोगो से चिढ थी । मैं हर अच्छे कपड़े पहनने वाले और हंसने वाले को खारी नजरों से देखता था । भूख तनमन मे गुंजलक मारकर चौबीसो घण्टे बैठी रहती लेकिन इसके बावजूद भी हम दोनो हसते रहते । आज मकान मलिक की चेतावनी का अंतिम दिन था कि बकाया सारा किराया जमा कराओ या कमरा खाली कर दो । पिछले कई दिनों से हम लगातार प्रयास कर रहे थे पर कहीं से भी जुगाड़ नहीं हो पा रहा था ।

"उठ साले, अभी तक सो रहा है ।" शाम को असित ने आते ही मेरे ऊपर से चादर हटायी तो मैं पसीने मे सराबोर था । "तू यहां आराम से सो रहा और मैं भूखा-प्यासा, थकाहारा, भटकता रहता हूं । किराये का कुछ करो अनु ने भी मना कर दिया ।" (अनु उसकी प्रेमिका का नाम था और आज वह उससे कुछ रुपये मांगने वाला था)

"यार, मैंने तो सुबह से कुछ खाया ही नहीं, तुमने तो युनिवर्सिटी में कुछ

खा पी लिया होगा।" भूख मेरी नस नस से फूट रही थी और मैं उसकी गुंजलक मे जकड़ा ताफड़ तोड़ रहा था।

क्या खाक खा लिया होगा। भूखे को सब भुक्खड़ मिलते हैं।

"फिर आज सोने का?"

"खाना और सोना छोड़ो।" उसने कहा।

"यार मेरी तबीयत ठीक नही है।" मैं कुछ रुआंसा सा हो उठा।

"मेरी ठीक है। मेरायन दौड़कर आ रहा हूं, अजमेरी गेट से यहां तक पूरे दस किलोमीटर।"

"कुछ दिन तुम गांव क्यों नही चले जाते हो? वहां कम से कम दोनो समय खाना तो मिलेगा और रहने की भी चिन्ता नही।" मैंने उससे कहा।

"हू, घर वाले भी यों ही देंगे रोटी, बिना दस बात सुनाये और फिर उनकी आखो का सामना कौन करेगा। यहां कम से कम पड़े तो रहते हैं। चुप-चाप।" उसकी आवाज लटकी हुई थी और ढीली।

"तुम आखिर चाहते क्या हो?"

"फिलहाल छः महीने तक खूब तर रोटिया खाना और सोना।"

"यार, असल में मैं भी थक गया हूं। आखिर यह भूख कब तक चलती रहेगी। सारे दोस्त भी नौकरी लगते ही एक एक कर दूर होते चले गये हैं। मनीष को देखो, राघव को देखो। अब तो मालूम भी नही कहां है। आते हैं तो भी नही मिलते।"

"तुम लोगो को समझ ही नहीं सकते कि लोग कितने तेज हैं। मनीष के बारे में मैंने तुम्हे बहुत पहले ही बता दिया था।" आवाज में थोड़ी तुर्शी लाते हुए वह बोला।

मैं मुंह-हाथ धो चुका था और बाहर जाने के लिए एकदम तैयार था। क्योंकि मकान मालिक के आने से पहले ही हमे वहां से फूट जाना था।

बाहर जाने की सोचते हो इस बार हम दोनों एक साथ उदास हो गये। शरीर को ढीला छोड़कर वह स्टूल पर लोथ की तरह पड़ा था। बाहर चलने के नाम पर शरीर मे थोड़ी सी हरकत हुई पर होठों तक ही सिमटकर रह गई। वह कुछ बड़बड़ाया पर आवाज इतनी धीमी थी कि होठो पर बैठी मक्खी नही उड़ी।

"तुम इतने कम्पीटीशन देते हो, कही भी सलेक्शन नही होता। कमी तुममे है, तुम मूर्ख हो।" आवाज में झल्लाहट घोलते हुए वह इतने जोर से बोला जैसे भूख की सारी जड़ मैं हूं।

"तुमने कौन से तीर मार लिये। सारे दिन छोरी से चिपके रहते हो। कही कुछ कोशिश क्यो नही करते।" मैने भी उतने ही ऊंचे बोलते हुए जवाब दिया।

"छैर छोड़ो यार। आज एक गजब का आइडिया आया।" उसकी आवाज लटककर नरम पड़ गयी थी। विश्वविद्यालय मे वह छोरी मिली थी मिस गुप्ता। तुम उसे क्यों नहीं फांस लेते। खूब पैसे वाली है। फिर तो दोनो को ठाठ रहेंगे।" उसने कुछ इस तरह कहा जैसे अचानक कोई गड़ा हुआ खजाना हाथ लग गया हो।

"अब ज्यादा बक बक मत करो। वह यह भी अच्छी तरह जानती है कि पिछले छः महीने से मैं यही पैंट शर्ट पहनता आ रहा हू और पैरो मे घिसी हुई हवाई चप्पल के साथ चेहरे पर भी हवाईयां उड़ती रहती हैं। अब यहां से जल्दी से फूट लो मकान मालिक आने वाला होगा।" हाथ मे ताला लेकर उसे बाहर धकेलते हुए मैंने कहा।

दोनों बाहर सड़क पर खड़े थे। एकदम चुप। बीच मे अबोला पसरा हुआ था। थोड़ी देर बाद उसके पांव आपसे आप पार्क की तरफ घूम गये और उसके पीछे-पीछे घिसटता हुआ मैं भी पार्क मे आकर बैठ गया।

रात के नौ बज गये थे और सोच की अन्धी सुरंगो में गोतें लगाने के बावजूद कोई रास्ता दिखायी नही दे रहा था, जहा से कुछ रुपयो

किया जा सके। दोनों वहां से उठे और उठकर चल दिये। पांव चुपचाप रेलवे स्टेशन जाने वाली सड़क की तरफ मुड़ गये थे।

"मैं बुरी तरह थका हुआ हूं और भूखा भी। मुझसे एक कदम भी नहीं चला जा रहा है।" उसके मुंह से आवाज के साथ झाग निकलकर हांफने लगे थे। मैंने झट से दौड़कर उसकी आवाज पर अपने पाव रख दिये और उसकी आवाज को वहीं थाम लिया।

"मैंने तो परांठे खाये हैं आचार के साथ।"

"तुम साले रहे ठेठ मध्यवर्गीय ही। मन परांठों और अचार में ही अटका रखा है। कोई चिकन की बात करते, व्हिस्की को सोचते तो मजा आ जाता।"

"क्यों बार बार याद करते हो। इस तरह भूख ज्यादा भड़कती है।" मैंने धमकाने के अंदाज में कहा तो वह चुप हो गया।

असित ने तह किये रूमाल को हल्के से अपने चेहरे पर फिराया और शरीर को ढीला छोड़कर मरे हुए कदमों से चलने लगा। मैं भी उसके बराबर बराबर चुपचाप चल रहा था। उसकी आंखों में हल्की नमी आकर ठहर गयी थी।" यार अपने को जरूर किसी ने शाप दिया है और यह शाप एक नहीं दोनों को मिला हुआ है।" मुझे लगा मेरे कुछ भी बोलते ही उसकी आंखों में बैठी नमी पिघलकर बाहर बहने लगेगी। हम पावर हाउस तक आ गये थे और रेलवे स्टेशन यहां से अभी भी दो किलोमीटर दूर था।

सामने सड़क के बीचों बीच एक शामियाना तना हुआ था और उसमें से कई लोग आ जा रहे थे। सोचा कोई शादी ब्याह होगा। वहां से आते हुए एक आदमी से पूछा तो मालूम हुआ मृत्युभोज था। हम शामियाने तक आ गये थे। जीमने वालों की एक पंगत बैठ रही थी और दूसरी उठ रही थी। बगल में पैदल आने जाने वालों के लिये जगह छोड़ रखी थी उसी के एक सिरे पर हम खड़े थे। असित ने थोड़ा इधर उधर देखा। निर्णयात्मक मुद्रा

में कुछ सोचा और दूसरे ही पल पंगत के एक कोने में जाकर बैठ गया। एक बारगी मैं हतप्रभ सा खड़ा रहा और पंगत में बैठे लोग मेरी तरफ देखने लगे तो अगले ही पल में भी असित की बगल मे बैठ गया।

मैं बराबर घबरा रहा था। जल्दी से उल्टा सीधा निगलकर हम बाहर आ गये।

"इस तरह एक दिन तुम जरूर मरवाग्रागे।" थोड़ी दूर आ जाने पर मैंने कहा।

"चलो आज का तो हो गया। अब मकान मालिक ऐसी तैसी करवाओ साले, इस खाने के लिए ही है क्या यह सब झंझट ? सच मे मुझे इस सबसे घृणा हो गयी है।" डकार लेते हुए उसने थूक की एक पुच्ची सड़क पर छोड़ दी। "अब तो एकाध सिगरेट मिल जाए और सोने को चारपाई।" इस बार उसने ठहाका लगाया और मूंछो पर हाथ फेरते हुए उन्हें सूंतने लगा। उनमें अटकी हुई पानी की दो चार बूंदे अगुलियो में ठहर गयी थी।

रेलवे स्टेशन आगया था। विश्रामालय में लोग जमीन पर, बैंचों पर, आड़े तिरछे, मुड़े तुड़े पसरे हुए थे। एक बेंच पर जरा सी जगह नजर आते ही असित उसकी तरफ लपका और पाव सिकोड़कर धम्म से पड़ गया।

मै घूमता हुआ दूसरे कोने मे आ गया। एक बेंच के कोने मे थोड़ी सी जगह थी पर वहां पहले से एक मरियल कुत्ता बैठा हुआ पांवो से अपने शरीर को खुजला रहा था। उसके हिलते ही ढेर सी मक्खियां उड़ी और फिर वापस आकर बैठ गयी। दुर ऽऽ दुर ऽऽ करके मैंने कुत्ते को वहां से भगा दिया और उकड़ूं होकर खुद उसकी जगह पड़ गया।

झपकी आयी थी कि पांवों से कोई चीज टकरायी और एक गीला धब्बा छोड़ गयी। झटके से मैंने अपने पांव फैलाये तो मुझे लगा किसी लिजलिजी और मवाद भरी चीज से पांव टकरा गये हैं। खड़े होकर पास हो लेटे व्यक्ति के ऊपर से चादर हटायी वहां एक कराहता हुआ बुड्ढा लेटा हुआ

था। चादर हटाने के कारण उसने मुझे एक गाली दी और दर्द से या अन्य किसी कारण से रोने सा लगा। बेंच के नीचे धब्बों पर मक्खियों का छत्ता अब भी भिन-भिना रहा था।

मन मवाद से भर गया और मैं बगलों में हाथ दिये वहीं इधर उधर डोलने लगा।

दीवार घड़ी में इस समय एक बज रहा था और अभी–अभी जेब से एक दिन और फिसल गया था।



सुनो साहेबान

ये मेरे अठ्ठाईस पार के दिन थे। उमर का रांगरूपन चेहरे पर साफ झलकने लगा था। एक आशा, एक विश्वास-मेरी पकड़ से बहुत दूर होते चले गये थे। मैं स्वयं नहीं जानता था कि मैं किस तरह के आदमी में तब्दील होता जा रहा हूं। समय को अपनी जद में लेते हुए एक एक कर सारे मित्र दूर होते चले गये थे, पर अभी भी कुछ लोग बचे हुए थे, पर जो बराबर इस विश्वास को दृढ किये हुए थे कि कभी न कभी कुछ जरूर होगा और इसी विश्वास के बल पर मैं अपने दिनों को घसीट रहा था। लेकिन इस घिसट मे एक खतरा भी था, क्योंकि कुछ समय पश्चात् जब इन लोगों का भी विश्वास उठ जायेगा तब ऐसी हालत में ये निहायत शरीफ लोग खूंखार हो उठेंगे। हालांकि अब भी कुछ लोग एक एक कर चले जाने वाले मेरे मित्रों के उदाहरण देकर मुझे बराबर इस बात का अहसास करा देते थे कि तुम कुछ भी बन जाओ उनसे बहुत पिछड़ गये हो। तब कई बार मुझे लगता मेरे भीतर का खूंखार आदमी दब्बू आदमी मे बदलता जा रहा है। मैंने अपने को एकदम अकेला छोड़ दिया था, नौकरी की अर्जियों से अलग। जहां मुझे न नौकरी की चाह थी न शरीफ लोगों की परवाह और न मकान की, न शादी ब्याह की। ऐसे में अचानक मैंने यह फैसला किया कि इतने वर्षों से इस शहर मे रह रहा हूं लेकिन इसको मैं समूचा कहां जान पाया हूं। इसकी रगों की पकड़ में मैं कहां

तक डूबा-उतरा हूं। इन सब लोगों से परे जिस आदमी को मैं अब तक अपने भीतर पालता रहा हूं, वह कहीं मर न जाए इसलिए मुझे इस शहर से दूर चले जाना चाहिए और इस जाने से पहले मैं इस शहर को टटोलता हुआ, चेहरों को पढता हुआ एक समूचा दिन गुजार देना चाहता था उसमें समूचा डूबकर।

इस एक दिन को मैं अपने ढंग से गुजारना चाहता था। मैं नहीं चाहता था कि मुझे कोई टोके, इसलिए सुबह उठते ही नहा धोकर मैं कमरे से बाहर आ गया। लेकिन तभी पड़ोस का रामकिशोर भागा आया और बोला—"नरेश आई.ए.एस. में आ गया।" मैंने उसकी बात पर कोई ध्यान नहीं दिया। यह उसको आहत कर देने वाली घटना थी। दरअसल मैं अब इन उक्तियों से ऊब चुका था। यहां के लोगों के पास अफसरी, पैसा और राशन के अतिरिक्त बात करने के लिए कोई विषय नहीं रह गया था। बी. ए. कर लेने वाले लौण्डे दो चार साल तक आई ए. एस. की झौंक में डोलते रहते और इसी तरह एक दिन बाबूगिरी और बच्चों में व्यस्त हो जाते। तब वे आई.ए.एस. का मुखौटा अपने बच्चों पर चिपका कर सन्तुष्ट हो लेते। एक आध जो अच्छी जगह चले जाते तो उनका स्तर अचानक ऊंचा उठ जाता। तब उन तक पहुंचने के लिए बाकी के लोगों को सीढ़ी की आवश्यकता पड़ती और सीढ़ी के दाम भी तब बढ़ जाते।

समय की रगड़ शहर के कुछ हिस्सों पर इस तरह लग रही थी कि उनकी शिनाख्त करना भी मुश्किल हो रहा था और कुछ हिस्से उससे एकदम अप्रभावित थे। यही हाल आदमियों का भी था। रोजी को हम कभी मिस चुलबुल कहा करते थे। लेकिन वही रोजी आज कॉफी हॉउस के बाहर मिली तो अपने में काफी भराव लिऐ हुए थी। यह भराव शरीर के साथ उमर का भी था लेकिन उसने उमर को अपने चेहरे पर वहीं रोक रखा था। वह कहीं से भी उसके चेहरे से फिसलती हुई नहीं लग रही थी। हाय! के साथ उसकी आवाज में चुलबुलापन तो था ही एक आत्मविश्वास भी था।

जिसके सामने मैं हिल गया। उसने मुझे काम के सम्बन्ध में पूछा तो मैंने यों ही कुछ बताना चाहा, लेकिन रुक गया और सोचने लगा कि कहीं ऐसा न हो कि पहले और कुछ बता दिया हो, अब और कुछ बता दूं। लेकिन इसके पहले कि मैं कुछ कहूं वह खुद बोल उठी "छोड़ो अब क्या रखा है काम वाम में। कुछ ऊंचे खटके करो।" मैं जानता था वह खुद ऊंचे खटके करती है लेकिन उसके पास चालाकी के अतिरिक्त और कुछ भी था जो मेरे पास नहीं था। मेरे अन्य साथी भी चले गये। दिनेश बाहर चला गया, मनीष प्राध्यापक हो गया, रामोतार बाबू तथा मनोज व्यापारी और मुझ पर पिछले पांच वर्षों से लगातार गर्दिश हावी थी। वर्षों तक मैं उस छोरी के प्रति अतिरिक्त भावुकता में बहता रहा। फिर सैकड़ों अर्जियां दीं, परीक्षाएँ पास कीं, पर एक अदद नौकरी नहीं जुटा सका। इस गर्दिश में तमाम चेहरे, तमाम यादें धूल पुंछकर पकड़ से दूर होती गई थीं। यह मेरी ऐसी व्यक्तिगत दुर्घटना थी जो किसी के सामने बयान करता तो दूर नितान्त अकेले में भी खुद को राहत नहीं दे पाता था।

"क्या सोच रहे हो? तुम अभी भी वहीं हो जबकि सभी लोग कहां चले गये।" रोजी की आवाज में सहानुभूति थी। हम उठकर बाहर आ गये। आज मैं औपचारिक भी नहीं था और उसके बिना कुछ कहे सामने पत्रिकाओं की दूकान पर चला आया। वहां मनीष खड़ा था। साहित्य का प्राध्यापक, कवि और आलोचक। उसे अपने अतिरिक्त कोई भी विद्वान नजर नहीं आता था। मिलने पर हमेशा फलां फलां जगह एप्लाई करने के लिए कहता और इस तरह जिन्दगी नहीं चलेगी समझाता। आज भी उसने उचटती सी निगाह मेरे लिबास पर डाली और वह कुछ कहे उससे पहले ही मैं बोल उठा—"हां हां, मुझे अब नौकरी नहीं करनी और अब तक भी जिन्दगी ही जीता आया हूं कोई मौत नहीं, और बड़े साहित्यकार भी तुम्हीं हो मैं नहीं।" वह एकदम अकबका गया और कुछ बोले उससे पहले ही मैं वहां से खिसक आया।

धूप की चिलक मे तेजी थी। चेहरे धूप मे झुलसने के बावजूद भागदौड़ रहे थे। अपनी छोटी मोटी खुशियों मे व्यस्त वे तमाम दुखों को नकारते हुए चेहरो को फीकी मुस्कान से ढक रहे थे। कुछ लोग धूप से इस कदर बेहाल थे कि एक कदम चलना भी उनके लिए दुश्वार हो रहा था। कार से सिनेमा हाल तक का चार पांच गज का फासला भी उनके लिए भारी पड़ रहा था।

महानुभावो,

पहले वर्ग मे जाने के लिए मैंने बहुत ताफड़े तोड़े। बहुत थुक्का फजीहत करवाई पर कुछ भी हासिल नही हुआ। मैं यह बराबर देखता रहा हूं कि इस नगर के लोगों को जरूर कुछ हो गया है या होता जा रहा है। मात्र थोड़े से धन के लिए छीजते रहते हैं साधारण जन तो बहुत रूपया बटोरने के लिए तिकड़म भिडाते रहते हैं ऊँचे दर्जे के लोग। समय बदलता है, लोग बदलते हैं लेकिन इनका कमीना भाव नही बदल रहा है बल्कि विकृत हो रहे हैं। खाक मे मिल रहे हैं, खाक मे मिला रहे हैं, जल रहे हैं, जला रहे हैं। इस तरह ये या वे लोग अपनी जिन्दगी गारत करते रहते हैं।

जिन्दगी गारत मेरी भी हो रही है। उठा पटक, दादागिरी और थोड़े दिन नोकरी मैंने भी की है और यही मुझ से भूल हो गयी। बहुत कम लोग हैं इस शहर मे जिन्हें मैं जान सका। एक एक आदमी रहस्यपूर्ण है। उसकी तहों के भीतर के आदमी तक पहुचने मे मेरा बहुत सा वक्त बरबाद हो रहा था। कई बार इच्छा होती नगा होकर इन लोगो के बीच से एक लम्बी दौड़ लगाऊ, सब पर हंसता हुआ, जबकि सच मे तो लोग ही हो मुझ पर हंसते हैं। इतने लोग, इतनी बातें। इतने जाल, इतने छद्म इसी एक आदमी के भीतर हैं जो हर दूसरे आदमी को सन्देह की दृष्टि से देखता है और इसी आदमी के पन्द्रह लाख प्रतिबिम्बो के बीच में जो रहा था, हाफता हुआ। सबसे बड़ी बात तो यह थी कि मैं फिर भी अपने को अकेला महसूस कर रहा था। छोरी के चले जाने के बाद के घोर यत्रणादायी

अकेलेपन के दिन थे ये । इस बीच में लगातार भटकता रहा, न जाने किस विश्वास में ।

देखिए साब । ताकत का सब खेल है । ताकत नहीं है तो कुछ नहीं है । आपकी औरत आप पर थूकेगी और पराये मर्द को ताकेगी । आंखें अन्दर धंस जायेंगी, गोड़ें दुखेंगे । और सारी दुनिया का तब आपके लिए कोई अर्थ नहीं रह जायेगा । यह तेल, देख रहे हैं न आप ? खासतौर से खासके आपके लिए बनाया गया है । शुद्ध सांडे का तेल जो घोड़े सी ताकत और बैल सी मजबूती ला देता है । सिर्फ पांच रुपये में । उन पांच रुपयों में, जो आप चाय पीकर मूत देते हैं, पान खाकर थूक देते हैं । यह सिर्फ आज आज है कल तो हम चले जायेंगे । "मैंने गौर से देखा उसके चारों तरफ सौ पचास की भीड़ थी । उसके हाथ में अब सिर्फ दो तीन शीशियां बची थी और वह इस ढंग से देख रहा था मानो जो इन शीशियों को नहीं खरीदेगा वह नपुंसक रह जायेगा और नपुंसक होना कोई नहीं चाहता था इसलिए हाथ की शीशियां भी शीघ्र ही बिक गयीं । अब वह फिर थैला टटोल रहा था कुछ इस तरह जैसे दो चार बची हो तो देखले और यह निश्चित है कि उनमें अभी भी कई शीशियां है लेकिन निकालेगा वह फिर भी दो चार ही ।

तो साहेबान,

मैं इन्हीं लोगों के बीच जी रहा था । सांस ले रहा था । हांफ रहा था । आयु का एक एक पल छीज रहा था । मुझे मालूम नहीं था कि जीवन इतना निर्मम है । गणित के अंकों की तरह सब चीजें आयु के हरेक हिस्से में तय होती हैं, जिसके हिसाब से लोग अपना सम्पूर्ण जीवन काट देते है । वह छोरी भी हिसाबी थी और इसी हिसाब के कारण मैं गड़बड़ा गया और जब लगा कि एकाध अंक तो पकड़ ही लूं ताकि किसी तरह जी सकूं

मदद नौकरी नहीं जुटा सका जबकि उस छोरी को गये भी तीन साल हो गये।

शहर के बीचो बीच। लोगों की आवाज ही के साथ कंठफोड़ आवाजें अर्थ-हीन ध्वनि मे बदल कर कानो से टकरा रही है। दुख और भूख की इस अन्तहीन शृंखला के बीच में एक ऐसे आत्मीय की तलाश में हूं जो मेरी अण्ट सण्ट बातें सुन सके। मेरे सवालों के जवाब दे सके। लेकिन वहां प्रत्येक आदमी के अपने सवाल हैं और वह उनसे जूझ रहा है। हालांकि उसके सवाल सिर्फ अपने तक ही सीमित हैं। मुझे लगा मेरे सवाल गायब होते जा रहे हैं। इन आवाजों के बीच मेरे सवालों के अर्थ भी खोते जा रहे हैं।

चौराहे पर खड़ा हू और चारों तरफ देख रहा हूं और नहीं भी देख रहा हू। क्योंकि शहर कभी मेरी पकड़ मे था ही नही और इस समय मैं इस बेजान शहर के बजाय चेहरो की जकड़ मे था। अधिकाश चेहरे एक मनहूस छाया से घिरे हुए हैं और जो आनन्दमय हैं उनकी सिर्फ एक झलक दिखायी देती है, फिर लोप हो जाती है। कई परत पार करने के पश्चात् भी आपकी पहुंच वहां तक नही हो सकती और जिन चेहरो के पीछे पहुंच होती है वे अधिकांश कष्टदायी होते हैं। तड़की हुई जमीन की तरह वे आपके इर्द गिर्द ही टूटते बिखरते रहते हैं। इन्हीं चेहरों के कारण मै गांव घर से भाग आया था। मै नही जानता वे अब तक साबुत बचे भी हैं या नहीं। क्योंकि कई बार शीशे मे देखने पर मुझे खुद अपना चेहरा तड़का हुआ नजर आता है, तब मैं अपने आप लहुलुहान होकर रह जाता हूं।

जगह से मुझे कभी लगाव नही रहा। बल्कि गांव में इतने वर्ष रहने के पश्चात् आज भी वहा जाने पर कई बार मैं पगडंडियो की भूलभुलैया में पड जाता हू। शहर मे मैं अपने आसपास की जगहों की शिनाख्त करते वक्त हमेशा चूक करता रहा। लेकिन चेहरों की घातक जकड़ मुझे भींचकर सारा सत निचोड़ देती है। एक एक चेहरा चाहे वह गाव का हो या शहर

का सोचते हुए मैं अक्सर लहूलुहान होता जा रहा हूं—खोखलाता रहा हूं। मेरा ख्याल था शहर के अपरिचित चेहरों के बीच मेरी अपनी पहचान खोती जा रही है। और जिन चेहरो को पीछे छोड़ आया हूं वे मेरे आस-पास कही नही हैं। इस तरह मैं अपनी निजी पीड़ा मे सरोबर हुआ डोल रहा था। और उस छोरी के आंचल तले सारा ताप पिघलाकर ठण्डी बयार मे बदलता हुआ महसूस करता रहा। यह सब भी मात्र थोड़े से दिन के लिए था। मेरे आस पास फिर वे ही तमाम चेहरे उग आये। इसी बीच छोरी भी जा चुकी थी। तब पहली बार मुझे महसूस हुआ कि चेहरों की इस गडडमगड्ड में जाने कितने चेहरे बेआवाज सिसक के साथ लोप होते रहते हैं, और टिप टिप करती ये तमाम चीजें अपने भीतर छिपे करंट से खून का पानी करती रहती हैं।

लेकिन लोगों,

इन तमाम पीड़ाओं के बावजूद मेरे आस पास के लोग बहुत खुश थे। कुछ कण्डक्टर को अस्सी की जगह सत्तर पैसे टिका कर खुश थे तो कुछ लोग मालिन से चुहल करके खुश थे। लड़का खुश था कि आज लड़की ने उससे बात की और लड़की खुश थी कि मालिक ने तनख्वाह बढ़ा दी। मालिक खुश था कि लड़की ने थोड़ा आगे बढने दिया। इस तरह कण्डक्टर खुश था, मालिन खुश थी, बाबू खुश था, मालिक खुश था, लड़की खुश थी और लड़का खुश था। पर इन तमाम लोगों के खुश होने के बावजूद मैं खुश नही था। कोई चीज थी जो बराबर मेरे अन्दर रड़क रही थी और इसी रड़क को दूर करने के लिए मैं इतने सालों से इस शहर मे डोल रहा था। और आज भी डोल रहा हूं। इसी शहर मे उन तमाम लोगों और जगहों के बीच। एक अर्थहीन कोलाहल मेरे चौतरफ रेंग रहा है। कही कोई तपिश नहीं। ठण्डे और बेजान लौन्दे की मानिंद शरीर लुढक रहे थे। उन सबको अपने ऊपर से गुजार देने के लिए सड़क औंधे मुंह हाथ पांव फैलाए पड़ी थी। लोगों की आवाजाही ही पूरे जोबन पर थी। वे ही रोजमर्रा के

चेहरे, वे ही ग्रादमी ग्रौर वे ही ग्रौरतें। शाम हो चुकी थी ग्रौर ग्रब मैं एक बिजली के खंभे के पास उसकी पीली, मरियल, बीमार रोशनी में नहाता हुग्रा खड़ा था। दायें पैर पर बायें पैर का भार डाले। थोडी देर बाद बायें पैर का भार दायें पर डाल दिया लेकिन ग्रब यह भी ग्रसंभव लग रहा था क्योंकि थकान पैरों से होती हुई समूचे शरीर में फैलती जा रही थी।

ग्राज फिर एक समूचा दिन जेबों से होता हुग्रा जाने कहाँ सरक गया। मैंने कई बार सोचा कि पैन्ट में जेब लगवा लूं लेकिन हर बार सिर्फ सोचकर रह जाता हूं। मुझे ग्राश्चर्य होता है जेबों को इतनी सुरक्षित रखने के बावजूद इतनी जल्दी फट क्यों जाती हैं। जबकि बहुत कम बार ऐसा होता है कि मेरी जेब मे कुछ रहता हो, सिवाय खाली ग्रंगुलियां रेंगने के। इस समय भी ग्रंगुलिया जेब के भीतर रेंग रही हैं। मैं सामने से गुजरती लड़कियों के चेहरो के हरफ पढ रहा हूं। ग्रचानक मेरे मन मे विचार ग्राया कि लडकियों की नस्ल खराब होती जा रही हैं। इस पर शोध होना चाहिए। लेकिन थोडी देर बाद मैं उनसे ऊबने भी लगा था।

एक ग्रौर समूचा दिन हाथ से निकल गया ग्रौर जेब फटी हुई है। मैंने फिर सोचा। इसी तरह एक एक कर पूरे ग्रट्ठाईस वर्ष जेबों से फिसलते गये। शाम गंदलाती जा रही थी, जहां चीजें ग्रपना ग्राकार खो देती हैं। हजार तरह के कीड़े भीतर से कुतर रहे थे। इस पन्द्रह लाख की ग्राबादी वाले शहर मे कोई भी ग्रपना नही बन सका जहां पल भर के लिए ग्रपना ग्रापा खो सकूं। सामने सडक पर उमड़ता भीड़ का सैलाब ग्रौर मोटरकारों की चिल्लपों समुद्र की गर्जन सा भय उपजा रहे थे। समुद्र के नाम से ही मुझे भय लगता है। बचपन मे पिता के मुंह से सुनी समुद्र के बारे मे बातों से मुझे लगता समुद्र को देखते ही मैं बेहोश हो जाऊगा, लेकिन जब जब भीड़ के उस उठते ज्वार मे देखता हू कि एक दूसरे से बेखबर लोग जाने कहा

भागे जा रहे हैं तो मुझे लगता यह ज्वार इसी तरह एक दिन मेरा समूचा अस्तित्व छीन लेगा।

तो भाई जी,

मैं पूरी तरह थका हुआ हूं और शहर की तारीखी जगह पर खड़ा अपने जीवन की दुखान्त स्थिति का जायजा ले रहा हू। मेरे जीवन की दुखान्त कथाएं एकान्त में दबे पांव नही बल्कि सरेआम इस तरह दबोचती रही हैं कि मैं चीख भी नही सका। फिर हर दुखान्त कथा हर किसी का दरवाजा नहीं खटखटाती। मुझे लगा समूचे परिवेश की नजरें सिर्फ मुझ पर टिकी हुई हैं। यह सोचते ही मैं अन्दर से गहरा रूआंसा हो उठा। पहली बार लगा मेरी आखें नहीं जिस्म रो रहा है, मानो कोई तेज धार वाली आरी अन्दर ही अन्दर रेत रही हो। जीवन के वे तमाम टुकडे एक एक कर जाने कहाँ लोप होते चले गये थे। पान की थड़ी वाले से एक बीड़ी मांगकर इस तरह सुलगाई मानों मात्र शोक के लिए बीड़ी पी रहा हूं जबकि आंते बुलबुलाने के साथ सिगरेट की भी भयंकर तलब हो रही थी और इस तरह बीड़ी पीने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं बचा था।

बुझ गई अधजली बीड़ी को फिर से सुलगाकर उसमे धुआंता हुआ मैं वहां से चल दिया। रेत की खरखराहट समूचे शरीर मे समायी हुई थी। आज मकान मालिक ने अन्तिम चेतावनी दी थी कि किराया दो या कमरा खाली कर दो, जबकि दोनो ही बातें मेरे लिए असंभव थी। खाना खाये हुए दो दिन हो गये थे। सुबह कभी की रखी एक सूखी रोटी को पानी में भिगोया तो फूलकर वह एक बडे सफेद फफोले में बदल गई। नमक डालकर उसको पानी समेत पी गया। तब एक बारगी वह छोरी और मा दोनो मेरी आंखों मे झूलकर कोरों तक लटक आयी। मैं होठों ही होठो फुसफुसाया—"देखो छोरी तुम भी देखो और मा तुम भी देखो अपने भीतर रडकती किरकिराहट को हथेली की ओट देकर कब तक रोके रखूं।"

जिस तरह कई बार तीली जलाते समय छर्र ऽऽ ऽऽ के साथ रोशनी का एक कतरा फेंककर दूर जा छिटकता है उसी तरह सड़क पर चलते हुए मैं महसूस कर रहा था जैसे एकाएक शहर से परे किक मारकर उछाल दिया गया हूं। वैसे सच में देखा जाये तो शहर के साथ था भी कब? बल्कि मैं तो उसके बीच ऊपर ही ऊपर डोल रहा था। आंखें झपकाकर देखता हूं। सिविल लाइन्स की तरफ जाने वाली सडक पर मेरे पांव चुपचाप आगे बढ़ते जा रहे हैं।

यह सड़क नगरकाजी की तरफ जाने वाली सड़क थी। सबसे शानदार और साफ सुथरी। दोनों तरफ फूलों वाले छायादार पेड़ सड़क के किनारे पीले फूल एक लम्बी कतार मे खिले हुए थे। लटके हुए कदमों से मैं अपने को किसी तरह घसीट रहा था। इस समय मैं उन सब लोगों के बारे में सोच रहा था जो मेरी ही तरह दिनो को घसीट रहे थे। जिनके भाग्य का फैसला इस सडक के इर्द गिर्द बंगलो मे रहने वाले कुछ लोग करते हैं। मुरझाए, सिकुड़े हुए उन लोगों का सोच सिर्फ रोटी तक सिमटकर रह जाने मे इन्ही लोगों की साजिश है। मैंने सोचा और हाथों से इस तरह एक्शन किया जैसे बहुत बडी साजिश का पर्दाफाश कर दिया हो। एक एक कर उन सभी लोगों के चेहरो से स्वयं को और सोच को फिसलता रहा जहा न नीद थी और न चैन। सहसा मुझे लगा पेट में एक सरसराहट हो रही है जैसे भीतर ही भीतर अपने तीखे धारधार पंजो के साथ कई छिपकलियां रेंग रही हो। कुछ सोच नही पा रहा था कि यह अनिश्चय का दौर आखिर कब तक चलता रहेगा। अनजाने में भीतर एक गुस्सा उग आया और आपसे आप मुट्ठियां भिंचती गई।

तो नगरकाजी जी। मुझे आपसे सीधे सवाल करने हैं। बडी जद्दोजहद के बाद मैं नगरकाजी के सामने खडा था। एकदम पस्त और थका हुआ। जबकि वे अपने साये पीए शरीर को सोफे पर दायें बाएं उलट पलट रहे

थे। "माननीय, पहले आप अपने इन दूतों को यहा से बाहर कीजिए।" मेरी आवाज खुलासा होने के साथ तेज थी। "मेरे पास ऐसा कुछ नही है जिससे आपको कोई खतरा हो। चाहे तो आप मेरी तलाशी ले सकते हैं।" इस बार मैं खड़ा हो गया था। उनके दांत बाहर निकले हुए थे और वे अपने दूतों को बाहर चले जाने का इशारा कर रहे थे। कमरे मे दूधिया रोशनी पसरी हुई थी। एक अजीब से सन्नाटे के साथ, जहाँ हर पल अघटित के घटित होने की सभावना बनी रहती है। नगरकाजी के चेहरे पर सब कुछ डकार जाने का भाव था, लेकिन मैंने साफ देखा उनके चेहरे पर भी सन्नाटे का असर तारी हो रहा है।

"देखिए, आपको जो कुछ कहना हो शीघ्र कहो। मुझे और भी बहुत काम है। आपने सिर्फ पाँच मिनट के लिए कहा था।" बाकी के शब्दों को चबाते हुए नगरकाजी चुप हो गये और हम दोनो के बीच फिर एक सन्नाटा तैर गया।

अचानक मेरे भीतर गुस्सा उमड़ आया और इसके उफान के साथ ही हाथ पाँव काँपने लगे। "साहेबान, अब मैं दिनो को अधिक नही घसीट सकता। मुझे मेरा खूंखार आदमी लौटा दीजिए जो आपने एक साजिश के तहत दब्बू आदमी मे बदल दिया है। मैं दो दिन से भूखा हूं और थका हुआ।" मैं हाफने लगा था। मेरे बोलने से रूकने से पहले ही वे ठठ्ठा कर हस पड़े। "आप तो सच में एंग्री यगमैन हैं। ठीक है आप अगले महीने मिलना।" उन्होंने पसवाड़ा बदला और घण्टी का बटन दबा दिया। मुझे लगा वे मेरी पकड से दूर होते जा रहे हैं। इनके चले जाने के बाद मेरी ठीक एक घण्टे पूर्व वाली स्थिति वापस लौट आयेगी और एक बार फिर मैं उसी सड़क पर होऊंगा जो कही नही ले जाती। इस सोच के उकसते ही भीतर के शब्द इकठ्ठे होकर होठो पर उकड़ू बैठ गये बस अब उन्हें एक इशारे की जरूरत थी और वे मेरे इशारे से पहले ही कूद पड़े।

"माननीय, आप अपनी औकात भूल रहे हैं। कुछ समय पूर्व आप भी वही

थे जहां आज मैं हूं। मुझे मेरे सवालों के जवाब चाहिए आज और अभी। आप बताइये अब मैं कहां जाऊं। मैं दो दिन से भूखा हूं और थका हुआ और अब तो रहने का भी ठिकाना नही।"

"देखिए तेज बोलकर आप डरा नहीं सकते। जी हां, हमें स्वयं चिन्ता है। शिक्षित बेरोजगारों के लिए कई योजनाएं विचाराधीन हैं। पूरी हो तब आप अखबारों में पढ़ लेना।" कहकर वे चलने को उद्यत हो गये। उनके होंठ इस तरह फड़क रहे थे जैसे चारा खाने के बाद बैल निश्चिन्तता से से ओगाल रहा हो।

"लेकिन तब तक मैं मर जाऊंगा और मरना मैं नही चाहता।" मुझे लगा मेरे सारे जोड़ ढीले होते जा रहे हैं और अन्दर की बची हुई सारी पूंजीभूत शक्ति मात्र ये शब्द ही हैं जिनके बाद मेरे पास कुछ नही बचेगा। कई बार ऐसा होता है कि आपको लगता है आपके पास ऐसा कुछ है जो किसी के पास नही है या आप कुछ ऐसा करना चाहते हैं जो और कोई नही कर सकता। ऐसे में यदि सब कुछ रोटी पर आकर अटक जाए तो लगता है खुद पर से खुद की पकड़ ढीली होती जा रही है लेकिन आज मैं इस पकड़ को ढीली नहीं करना चाहता था। नगरकाजी अपनी जगह से खड़े हो गये थे और अपने दूतों को मुझे बाहर निकालने का आदेश दे रहे थे।

मैं एक ऐसी अन्धी सुरंग मे था जहां चीजे होती हुई भी न हुई होकर रह जाती हैं। चौतरफ अबोल सन्नाटा। वे दो थे और मुझे झिंझोड़ रहे थे। मैं था और नही था। क्योंकि मैं सुन रहा था पर उनके कहे अनुसार उठ नही रहा था या मुझसे उठा ही नही जा रहा था, मैं स्वयं नही जानता। थोड़ी देर पश्चात् वे दो और आ गये और मुझे कुर्सी समेत उठाने लगे, लेकिन मेरे पांव जमीन से चिपके हुए थे। वे सब बुरी तरह परेशान थे जबकि इस समय वे छः या सात या आठ, मुझे नही मालूम कितने थे,

क्योंकि मैं चौतरफ उनसे घिरा हुआ था। इन्हीं आकृतियों के बीच नगर-काजी की धुंधली सी आकृति फिर दिखाई दी। वे परेशान थे और तम-तमाए हुए। पहली बार उनके चेहरे पर पसीने की कुछ बून्दे आकर ठहरी और मेरे चेहरे पर हल्की हंसी। मुझे लगा मेरे पांवों के नीचे जड़े फैलती जा रही हैं।



रेगिस्तान के इस तरफ

चीजें यही थी । समूचे प्राकार के साथ । सड़के इमारतें, पेड़ और बिजली के खम्भे । मैं इसी जगह बैठा रहा करता था । चौतरफ खुलापन और सीढियां, तीखी और करकरी धूप, मुझे अपनी देह पसीजती सी लगी । भौंहो व मूंछों के बालो मे अटकी हुई पसीनें की बूंदे टपक रही हैं । एक, फिर एक और फिर एक, मानो समूची देह रिस रही है । एक बूंद फिर एक बूंद । देह का कद घट रहा है । एक पल, एक पल, फिर एक पल । जैसे रेत पर पानी की एक बूंद, एक बून्द, फिर एक बून्द ।

मैं एक बार फिर पूरा का पूरा दृश्य जी गया । नही एक बार फिर पूरा का पूरा मर गया । दोनो हाथो से अपना चेहरा दबोचकर कुछ टटोलने लगा जैसे पहली बार मैंने उसका चेहरा टटोला था । पहली बार मेरी निगाहें उसकी आंखो पर टिकी थी । नीचे हल्का स्याहपन । मैं समूचा सिकुड़कर उतना हो गया था जितनी उसकी आंखें । अपनी दोनो आखें जोर से भींच कर एकदम खोल दी । अब वह ठीक मेरे सामने खड़ी थी अपने पूरे कद सहित ।

वही दो आखें हवा मे डोल रही थी अपनी हमी के साथ और मैं उस हमी को छूने के लिए दौड़ रहा था, हाफता हुआ । वे अब भी यही थी ठीक मेरे पास । हौले हौले मुझ समूचे को सहलाती हुई ।

पाच वर्ष पहले वे सच मे यहां थीं, अपने पूरे कद और आकार के साथ ।

मेरे अन्दर खिर्र खिर्र सा कुछ होने लगा जैसे बटेर अपनी छः उड़ानों के बाद सातवी उड़ान उड़ रहा हो, बिना किसी आशा एवं विश्वास के साथ।

"तुम विश्वास करते हो ?" उसने अपनी हथेली फैलाकर मेरे घुटनों पर रख दी। "सच बताऊं ?" तब मुझे वहां एक भी रेख दिखाई नहीं दी, हथेली भी नहीं। वहां सिर्फ मैं था, अपने बढ़ते हुए आकार के साथ। झट से मैंने उसकी मुठ्ठी बन्द करदी कसके, "खोलना मत" और उस मुठ्ठी को जोर से चूम लिया। वह यहीं बैठी थी। इसी चौकोर चिकने पत्थर पर।

लू का एक झौंका आया। आंखो मे चरमराहट हुई। रेत के कण रड़कने लगे थे। मुझे एक गिलास ठण्डा पानी पीना था। सिगरेट पीनी थी और बुक वर्ल्ड में जाकर एयर कंडीशनर की हवा खानी थी। मतलब मुझे वहां से उठना था।

"सुनो, क्या सच में तुम चले जाओगे ?"

"हां, सिर्फ पन्द्रह दिन के लिए, गांव मे मां की तबीयत ठीक नहीं है।" न सिगरेट पी, न बुक वर्ल्ड गया और न पानी पीया। मैं लाइब्रेरी के ठीक बीच मे खड़ा था। दोनों ओर टेबिलों पर पुस्तकें और कुर्सियों पर लड़के लड़कियां। मुझे आश्चर्य हुआ सब कुछ वैसा ही था। एक ट्यूबलाईट की रिं रिं की आवाज आ रही थी। मैं घूमा और उसी टेबिल के पास जाकर खड़ा हो गया जहां वह नोट्स लेती थी। वहां अब भी एक लड़की बैठी थी। वे आवाज, वे हरकत, चुपचाप। मैं टेबिल को उस जगह को छूना चाहता हूं जहां उसकी अंगुलियो के पोरो ने कई बार हरकत की थी। बहुत देर हो गयी, लड़की अब भी वहीं बैठी थी।

"ओ.के." बेसाख्ता मेरे मुंह से निकल पड़ा। दिल तेजी से धड़कने लगा। अबेर किए वहां से घूमा और पुस्तकों की रेक्स के पास आ गया। यहां मेरी स्थिति गड़बड़ा गयी। भयंकर उमस, बहुत प्यासा, भूखा और थका थका। पुस्तकें जैसे मेरे समूचे वजूद पर हंस रही हैं। हजार हजार हाथो की छुवन

खिए किताबें आड़ी तिरछी पड़ी थीं। इन हाथो मे एक हाथ उसका भी था। दोनो आंखें भी इन्ही सतरो के बीच कही छुपी हुई हैं और ऊपर ही कही आवाज मडरा रही है जिसे मैं खोज नही पा रहा हूं।

एकाएक दोनो हाथ फैलाकर किताबो को बाथ में भर लेता हूं। उनमे लिपटी हुई गर्द हाथों और कमीज पर चिपक जाती है। हल्की भूरी, महीन, एकदम ठण्डी। अजीब सी बेचैनी मन को घेर लेती है तन को भी। हजार लाख शब्द इनमें बिखरे पड़े हैं। समूचे वजूद और परिवेश के साथ। कोई कुछ बोलते क्यों नही है? बगावत क्यों नही करते? बगावत? शब्दों की बगावत? एक बारगी मैं गर्द मे लिथड़े हुए शब्दों के प्रति सन्दिग्ध हो उठता हूं। पर दूसरे ही पल वे मुझे एक ध्यानस्थ मुनि की तरह लगे। मौन, निश्चल, एकदम शान्त, क्वारें। इच्छा हुई इनमे घुल जाऊं। वाणी से परे, केवल शब्द, जिसे सिर्फ महसूस कर सकूं। एक समय के बाद प्रश्न भौंथरे हो जाते हैं, धारहीन, सपनों का रग गर्द होकर पीला पड़ जाता है और चीजे होती हुई भी न हुई होकर रह जाती हैं, थिर भावहीन चौतरफ एक चिलक, तीखी, धारदार, पैनी जो छीलती जाती है सबकुछ, एक जुनून में, शरीर के अतिरिक्त सब कुछ। तब आपकी चीख भी लुप्त हो जाती है, बाहर से नही अन्दर से भी।

"सुनो, क्या सच मे तुम चले जाओगे?"

"मैं सिर्फ पन्द्रह दिन के लिए जाऊंगा।"

मुझे जोर की प्यास लगी और भूख भी और थकान भी। सावधान की मुद्रा मे खड़े होकर मैने पुस्तको की रेक्स को एक सेल्यूट मारा—फौजी ढग से और घूम गया।

मैं भूखा था, पेट मे सिर्फ हवा भरी हुई थी, पानी भी नही। पिछले वर्षों मे कई इण्टरव्यू देने के बाद भी कही कोई काम नही मिला था। लेकिन हर रोज लगता कल जरूर काम मिल जायेगा या कहीं से बहुत सारे पैसे आ जायेंगे, यह सोचकर थोड़ी देर के लिए खुश हो लेता और इस तरह एक दिन और कट जाता।

नल खुला था, मैने मुँह लगा दिया, पानी पीया, फिर पीया और फिर पीया। दायी तरफ चार-पांच लड़कियां आकर खड़ी हो गईं। वे हंस रहीं थी खिल-खिल। अपने कन्धे सिकोड़कर मैं वहां से हट गया।

पानी की बून्दे दाढ़ी के बालों मे अटकी हुई थी, इक्की-दुक्की। लड़कियों में थरथराहट तैर गयी। हंसी के साथ उनकी समूची काया डोल रही थी। वे सब कितनी सुखी हैं। मैं सोचने लगा।

बुक वर्ल्ड मे घुसते ही ठण्डी हवा का एक झोंका सरसराता हुआ पूरे तन-मन मे छाकर एकदम हल्का बना गया रूई के फाहे सा। काउन्टर पर बैठने वाली लड़की ने मुझे देखने के बावजूद कोई प्रतिक्रिया जाहिर नहीं की बल्कि कन्धों को एक झटका देकर बालो को हल्के से संवार दिया और कोई पत्रिका पढ़ने मे मशगूल हो गई। वह जानती है कि मैं अक्सर आता हूं और पत्रिकाएँ उलटकर चला जाता हूँ, नई किताबें देख जाता हूँ पर खरीदता कभी कुछ नहीं। असल में तो मैं सिर्फ उसे देखने आता हूं। कई बार ऐसा होता है कि जब आप एकदम रीते हों और सूने, निचाट अकेले। ऐसे में एक जोड़ी आंखें भी बहला देती है, हल्के से सहला जाती है।

बाहर आकर फिर ठिठक जाता हूं। लम्बी, हाथ की अगुलियों सी पतली सड़कें बिना करवट एकदम सीधी लेटी पड़ी हैं। अपने ऊपर से पगथलियों को गुजार देने के लिये। अनगिनत पगथलियों का ताप इनके भीतर है। दोनो ओर अशोक के पेड़, बोगन बेलिया, बिजली के खम्बे, पीले फूलों वाले पेड़। हवा के साथ गुफ्तगू करते, परछाइयों का जाल बुनते और सड़क के ताप को सहलाते हुए इस छोर से उस छोर तक खड़े हैं।

मैं मानविकी पीठ की सीढ़ियों पर आकर बैठ जाता हूँ, आहिस्ते से। मुझे लगता है सारी इमारत हिल रही है होले-होले। अंगुलियों के पोरों से खम्भे को सहलाता हूं। मेरे अन्दर की सारी पूंजीभूत कोमलता सिकुड़कर पोरो पर टिक जाती है। लगता है अभी खम्भा बतियाने लगेगा। जाने कब से वह अपने भीतर एक अकथ पीड़ा छिपाये खड़ा है, एकदम मौन। और उस

मौन को बरगलाने के लिए सहलाता हुआ मैं। अंगुलियां कांपने लगती हैं और भीतर चटककर टूटते रहते हैं कई चेहरे।

बहुत अधिक नहीं होते हैं पांच वर्ष। सब कुछ वही है और वहीं रहेगा, मेरे होने और न होने के बावजूद। उसकी एक जोड़ी आंखें और मुट्ठी भर हंसी के साथ।

"देखो", हथेली मेरे सामने फैली थी। आड़ी तिरछी रेखाओं के साथ।"

तुम भी अजीब हो।" उसने कहा।

"क्यों" ?

"कोई इतना चुप्पा भी रहता है ?"

मैं हंस पड़ा जोर से।

"गांव में सब ठीक है न ?" इस बार उसकी आवाज खुलासा थी।

"हां, मां की तबीयत थोड़ी यूं ही रहती है।" मैंने कहा।

"और कौन-कौन हैं गांव में ?"

"सरदी बहुत है आज, देखो, अभी भी बर्फ की खखरी जमी हुई है।"

हंसते हुए मैंने उसके कानों पर स्कार्फ को कस दिया और उसके बोले हुए शब्द दुबककर घास की पत्तियों में कहीं अटक गये थे।

"तुम रहते कहां हो। कभी कमरे पर नहीं ले चलोगे ?"

"ले चलूंगा एक दिन।" मैं घबरा गया। उसकी आंखें ठीक मेरी आंखों के सामने थी। बिना झपके, एकटक, शान्त। उनमें क्या कुछ नहीं था ? मैंने उसके बालों में हाथ फेर दिया हलके से। आंखों में कुछ तैर आया। उसकी गर्म सांस के बफारे मेरे गालों को छूकर ऊपर उड़ रहे थे।

"तुम थके हुए से लग रहे हो।"

"चलो कॉफी पीते हैं।" मैंने कहा।

"नही, पहले बताओ तुम थके हुए से क्यों हो ? और उनींदे भी। जैसे बरसो से नहीं सोये।"

"बस, यूं ही। कल देर से सोया था। देखो, कल और भी तेज सरदी पड़ेगी। अखबार मे पढ़ा था शिमला में स्नोफाल हुआ है, उसी की शीत लहर आयी हुई है।" कहकर मैंने उसकी ओर देखा; आंखो मे दो तारे टिमक रहे थे और वह लगातार मेरी आंखों में देख रही थी। मैं गड़बड़ा गया।

बहुत अधिक नही होते है पांच वर्ष। बहुत अधिक नहीं होती है पच्चीस वर्ष की उम्र। लेकिन बहुत अधिक भी होते हैं पाच वर्ष, बहुत अधिक भी हो जाती है पच्चीस वर्ष की उम्र। बड़ी जद्दोजहद करता रहा हूं जिन्दगी की रग पकड़ने के लिए। मुट्ठी मे भीचकर उसकी उभरी एक-एक नस को चीर-कर देखा है, जिसे हम जिन्दगी जीना कहते हैं या जो जिन्दगी हम जी रहे होते हैं। असल मे तो हम जिन्दगी नही मरने का अभ्यास कर रहे होते हैं। जिस तरह मां की लोरी सुनते हुए न जाने कब आंख झपक जाती है, उसी तरह यह जिन्दगी बहला फुसला कर अनजाने, अचानक हमें एक दिन धीरे से मौत के हाथों में सौंप देती है। एक गोद से दूसरी गोद में।

"सुनो", मैं चौंककर देखता हूँ। कही कोई नही है। हवा हल्की सी सूसाट के साथ पेड़ों की पत्तियों को चीरकर चली जाती है और पेड़ फिर से पत्तियों को लटका कर खड़े हो जाते है चुपचाप।

"मैं सिर्फ पन्द्रह दिन के लिए जाऊंगा।"

गीलेपन को जल की बून्दों मे बदलकर ढरकने से पहले ही उसने वहीं थाम लिया। "कहीं घूमने चलो" उसने कहा।

मैं हां-भर देता हूं।

"देखो, इस बार हम शहर से बहुत दूर चलेंगे।"

मैं हंसकर रह जाता हूं।

उसके पास न खत्म होने वाली हजार बातें थी। और उसकी बातो पर हमता और टुकुर-टुकुर ताकता मैं। लेकिन तब भी न जाने क्यो मुझे एक भय हमेशा दबोचे रहता। बापू के मरने के बाद मैं हर चीज, हर आदमी के प्रति सन्देहशील हो उठा था। पन्द्रह दिन नहीं, पूरे पांच वर्ष से हम दोनों कभी नही मिलने वाली अलग-अलग दुनियाओ मे चले गये हैं। लेकिन मुझे आज भी लगता है यह इमारत दिसम्बर की उस ठण्डी शाम से ही कांपकर खखरी में जमी हुई है जो इस भयंकर गरमी और लू के बावजूद नही पिघली, बाहर से। लेकिन अन्दर से रिसती जा रही है। अपने आप सिमटती, सिकुड़ती, खिरती जा रही है। समय की घिसट चीजो को भी अपने लपेट मे ले लेती है। बेजान, वेहरकत, बेसोच चीजें भी समय की जद मे आकर खिरती, छीजती रहती हैं भीतर ही भीतर। तब उन्हें किसी सहारे की जरूरत नही होती। न हाथों की छुअन की, न मरम्मत की, न पलस्तर की न इलाज की। और इसी तरह एक दिन नितान्त अकेले, अचानक मर जाती है। अपनी ही जड़ो पर अपनी लाश को दफनाते हुए।

धूप पांवों तक आकर समूची देह को दबोच लेने की फिराक मे थी। लेकिन एक दरख्त की छाया बराबर उसका पीछा कर रही थी। वैसे भी मुझे यहाँ बैठे बहुत देर हो गई थी और फिर पेट रह रहकर इस बात का अहसास करा देता था कि तुम भूखे हो। यह गरड़-गरड़ की अजीब सी आवाज करके वहाँ से उठने को बाध्य कर रहा था। लू और धूप मे सारा वातावरण सीज रहा था। हालांकि दोपहर अपने जीवन के उतार पर थी लेकिन धूल के कारण चारों तरफ मैल की हल्की सी परत जमी हुई थी जो रह रहकर गरम बफारे छोड रही थी।

मेरी आँखें चारो तरफ घूम गई। कौन सी जगह बची है जहाँ हम नहीं बैठे थे। ये सीढ़ियां, ये कैन्टीन, ये लॉन, ये स्वीमिंग पूल, ये लाइब्रेरी, ये समूचा परिसर। ये सब कुछ छोड़कर जाना होगा।

"सुनो। मैं जाऊंगा अब, सब कुछ छोड़कर।" मैं धीरे उठता हूं। हाट

दीवारों से टकराकर लोप हो जाते हैं कहीं। उसके शब्द भी यहीं दबे पड़े हैं लेकिन मरे हुए। कभी-कभी भ्रम होने लगता है कि ऐसा कुछ नहीं हुआ है और न होगा। लेकिन जब देखता हूं एक अकेला मैं इस दुपहरी मे खड़ा हूँ उबलता हुआ। तब लगता है यह काया चिन्दियाँ होकर लू के थपेडों मे उड़ रही है। और ये पेड़, ये इमारत, ये सड़कें और एक कोने में खड़ी वह भी हंस रही है अपने उन्हीं मरे हुए शब्दों की लाश पर जिन्हें खुद उसी ने जन्मा था। मैं अन्दर तक खौफ से भर उठता हूँ।

खाली बरामदों से गुजरकर मैं विभाग के उस कमरे में आ जाता हूं जहां कभी हम एक साथ क्लास में बैठते थे। एकदम सूना। परीक्षा की तैयारी की छुट्टियों के दिन है इसलिए यहां एक भी विद्यार्थी नहीं है। पंखे की खिर्र खिर्र आवाज आ रही है। एक सूखा पत्ता इधर-उधर डोल रहा है, मेरी आवारगी की तरह। एक टेबिल से दूसरी, तीसरी, चौथी टेबिल। मुझे लगा मेरी तरह पत्ते से भी सब कुछ दूर होता गया है—हमेशा-हमेशा के लिए। अब यह पेड़ के पास कभी नहीं जा सकेगा। पेड़ अपनी जगह मौजूद है अपने वजूद के साथ, लेकिन एकदम असम्पृक्त। पत्ते को देखकर मैं अधिक उदास हो गया क्योंकि वह भी हाथ में पकड़ते ही किर्र किर्र के साथ टूट बिखर गया। मेरे लिए यह और ज्यादा उदास कर देने वाली घटना थी।

उसने लिखा था "समय के गलियारे में सब कुछ बिखरकर मिट जाता है। लोग भूल जाते हैं, सब कुछ। तुम भी एक दिन इसी तरह भूल जाओगे सब कुछ. एक दिन, एक महीना, एक साल, दो साल, तीन साल। फिर एक ऐसी परत जो धीरे-धीरे ठोस चट्टान मे बदल कर अपने भीतर दबोच लेती है सब कुछ। जो कभी नहीं कुरेदी जाती, न तोड़ी जाती, न तोड़ने का उपक्रम किया जाता है। "मैं जानता हूं लोग भूल जाते हैं बहुत जल्दी, बहुत कुछ। चीजें वहीं रहती है लेकिन वहीं नहीं रहती तब उनके लिए आखिर यह सब कैसे होता है?

मैं क्यों नहीं भूल पाता कुछ भी ? इन पांच वर्षों में हर चीज अपनी जगह सिर्फ ज्यों की त्यों ही नहीं है, बल्कि सच मानों, मुझे लगता है उनका आकार भी अपने औसत से अधिक बढ़ता गया है। यहां तक कि अब तो उसकी छाया भी साथ डोलने लगती है कभी-कभी, कुछ ऐसे जैसे इन सब चीजों के साथ वह अभी भी वैसी ही हो जैसी पहले कभी थी।

"सुनो, मैं सच मे मुक्त होना चाहता हूँ। सब कुछ भूल जाना चाहता हूं। ये चीजें, ये यादें, ये सड़कें, ये पत्थर, ये यह, ये यह, ये सब कुछ मुझे छुए बिना लौट क्यों नहीं जाते ? ओझल क्यों नहीं हो जाते एकदम हमेशा-हमेशा के लिए।

"सुनो तुमने कुछ सुना ?

मुझे लगता है, तुम अभी आओगी जैसे अक्सर आती थी। अबोले, एकटक मैं तुम्हें देखता रहूँगा। कोई बोल नहीं, कोई आवाज नहीं। सिर्फ आंखों की हिलती पुतलियां।

"मुक्ति ?" तुम ठठाकर हंस पड़ोगी समूचे शरीर से।

"छुटकारा ?"

मेरी बची खुची हिम्मत परे सरक जायेगी।

"सुनो। सच मानो मैं हर पल दौड़ता हूं पर चौतरफ बन्द दरवाजे देखकर फिर लौट आता हूं।"

यह गर्म दुपहर की तपती घड़ी है। चौतरफ सांय सांय करता सन्नाटा फैला हुआ है। हांफती हुई चीजें अपनी ठौर से उचट जाने को आतुर हैं। मैं जानता हूं ये क्षण तुम्हारे लिए ठण्डे, शान्त, एयर कंडीशनर से छनते उनींदे क्षण होंगे। और मैं इन क्षणों को छूना भी नहीं चाहता हूं। लेकिन मुझे लगता है तुम अभी आओगी जैसे अक्सर आती थी हौले से छू दूंगा। देखता रहूंगा पास से, और पास से और अधिक पास से जब तक तुम्हारी सांस के बफारे मेरे को छू नहीं देंगे।

मुझे आश्चर्य होता है बरसों पहले की चीजें, घटनाएं आज भी उसी रूप में क्यों है या मैं ही क्यों उन्हें जिलाए हुए हूं । जबकि तुमने उस सबको कभी का छोड़ दिया । शायद कुछ लोग ऐसे होते हैं जो अपना सब कुछ दूसरों को सौंपजाते हैं । अपनी यादें, अपना सन्नाटा, अपना सूनापन और अपनी खुद की वह भयावह खोह जिसमे तुम ताउम्र घुलते रहो ।

अब तुम ही बताओ, यहां से जाऊं भी तो कहां ? क्योंकि यह अन्धी खोह हमेशा और हर जगह साथ रहेगी ।

सुनो । मेरी बात सुनोगी ? मैं सिर्फ पन्द्रह दिन के लिए गया था, पर तुम्हें तो पांच वर्ष से नहीं देखा अपनी समूची देह के साथ । मेरे लिए ये पाच वर्ष रेगिस्तान की तरह फैल गये हैं जिसके इस पार मैं नंगे पांव खड़ा हूं, अपनी यादे, अपनी चीजें, अपनी पसीजती देह के साथ । तुम्हारी चीजे, तुम्हारी यादें भी संभालकर रखी हैं ।

हां, लेकिन तुम आकर इनको मांगो तो सही । मैं चाहता हूं तुम अपनी यादें ले जाओ । इनको ले जाते ही मूझे सुख मिलेगा । सुख ? इस क्षण मैं अकेले होने के बावजूद ठठाकर हंस पडा । आंखें फैलकर चौड़ी हो गयी, तसल्ली के साथ । मैं जानता हूं तुम अब कभी नही आओगी । इन यादों को मैं बाट भी नहीं सकता, फैंक भी नहीं, समय की तरह । समय भी मेरे लिए सिर्फ एक लम्बी सुरंग होकर रह गया है जहा न कभी रात होती है न दिन, न घण्टे न मिनट । इस गर्म, तपती धुंधली धूप में शब्द भी भाप बनकर उड़ गये हैं । उन शब्दों को तुमने भरपूर जीया था, मैंने भी । लेकिन इतनी गरमी के बावजूद एक भी शब्द पिघलकर बाहर नहीं बह रहा है, न झर रहा है । ये शब्द दूसरी दुनिया के जान पड़ते हैं जो एकदम मूक बधिर हो गये हैं जो अपनी आवाज के लिए बेकली से इधर उधर डांवाडोल होते फिर रहे हैं । मै भी खाली-खाली सा डोल रहा हूं । सुख-दुख से परे । उस उम्र मे जहां किसी का साया नही होता । एक अकेले तुम अपने दुख को जी रहे होते हो । चीजें बहुत दूर जान पड़ती है । तब अपनी पकड़ से बहुत परे । उस दोपहर हम नीरोज में थे ।

ठण्डा, हल्का अन्धेरा। सरसराहट करती कूलर की पतली आवाज एग्जास्ट फैन की तगड़ी आवाज के नीचे दबकर रिरियाहट में बदल गयी थी। पास मे एक छोटी सी खिड़की थी जिसमें परदा लटका हुआ था, हल्का सलेटी रंग का। हवा के झोंके से वह परे सरक जाता तो बाहर सड़क पर दौड़ते लोग दिखायी देते। हांफते, पसीना पोंछते, पैदल, साइकिल पर, मोटर गाड़ी में। उन सबके ऊपर से धूप की चिलक आड़ी तिरछी तैर रही थी। एकदम तीखी, धारदार। मैंने उसे वह चिलक दिखायी थी, धूप की मरीचिका।

"सुनो, कल इम्तहान खत्म हो जायेंगे।"

उसका चेहरा पानी के गिलास की ओट हो गया था। सिर्फ दो आखें टिमक रही थीं। वे न गिलास में देख रहीं थीं, न मेरी तरफ। वे अपनी जगह थीं एकदम सफेद और उजली।

"तुम गांव जाओगे छुट्टियों मे?" उसने मेरी ओर देखा। गिलास अब टेबिल पर था। एकदम रीता। उसके आर पार से उसकी शर्ट का बटन नजर आ रहा था, नीला। अपने आकार से बड़ा।

"मैं यहीं रहूंगा इसी शहर में।" मैंने कहा।

"क्यों? गांव नहीं जाओगे?" वह थोड़ी बेचैन हो उठी।

"नहीं अब नहीं।"

उसकी आखें विस्मय से फैलकर चौड़ी हो गयीं। एक हथेली टेबिल पर औन्धी पड़ी थी। बेपरवाह। मैंने देखा उसकी नसें मरोड़ के कारण उठी हुई थीं। पतली और नीली। हथेली की रेखाओं को दबोचे हुए।

"छुट्टियों में तुम यहां क्या करोगे? उसने पूछा।

"अभी कुछ तय नहीं।" आसपास की टेबिलें खाली थीं। उन पर एक अजीब सा खालीपन पसरा हुआ था। जो धीरे-धीरे हमें भी अपनी लपेट में

लेता जा रहा था। इस बार उसकी हथेली सीधी थी। मैंने गौर से देखा शून्यता का दबाव उस पर भी भरने लगा था। मुझे वह एकदम सपाट लगी। सफेद, रेखाविहीन।

"देखो, मैं सारी बात कहूंगी और तुम्हें लिखूंगी। तुम बहुत जल्दी गम्भीर हो जाते हो।" उसने बात खत्म करने के साथ ही पानी का गिलास खालीकर टेबिल पर औन्धा रख दिया।

"तुम सोचते बहुत ज्यादा हो।"

"खेलने के दिन भी तो नही है।"

"पर करने के तो हैं। कुछ करना चाहिए।" उसने कहा।

"जब तक कुछ चीजें तय नही हों और आदमी खुद अधरभूल मे हो तब करने का भी कुछ अर्थ नही रह जाता"। मैंने कहा।

"सच में, तुम तो दार्शनिक की तरह बातें करने लगे हो"। धीरे से वह हंस दी। मैंने फिर कुछ नही कहा। उसकी हथेली मेरे हाथ में थी और मैं उसे होले-होले सहला रहा था। चुपचाप।

"हमें अब चलना चाहिए। मुझे सामान पैक करना है और रिजर्वेशन भी करवाना है।" उसने कहा।

हम उठकर बाहर आ गये। धूप ढल रही थी पर उमस कम नही हुई थी। सड़कों पर लोग आ जा रहे थे। चीजें वही थी चुप, मुरझाई हुई। उसके कहे हुए शब्द मेरे पास थे, मेरी जेब मे, समूचे विश्वास के साथ।

मैं पहली बार दहशत से भर उठा। मैं विश्वास नही कर पा रहा था कि दो दिन बाद वह सच मे यहां नही होगी। ये जगहें यही होंगी, चीजें यहीं होंगी। शब्दों की गूंज यही होगी। शब्द भी यही कही डोल रहे होंगे लेकिन तब उनके अर्थ खो चुके होंगे। उनका मतलब खो चुका होगा क्योंकि उनका अर्थ, उनका अस्तित्व सिर्फ उसके साथ है और वही यहां

नहीं होगी। मैं बराबर अपने को दिलासा दे रहा था और उस होने को नकार रहा था जो होने वाला है।

दो दिन बाद मैं उसे छोड़ने आया था स्टेशन तक।

"अच्छी तरह रहना। मैं तुम्हें जरूर लिखूंगी और जल्दी।" उसने कहा। उसका सिर मेरे हाथों में था और आंखें दोनों आंखों में। दहशत मेरे भीतर रेंगने लगी थी। कई बार गहन आत्मविश्वास के क्षणों में भी आशंका के कीडे रेंगने लगते हैं। तब आप उनको मुंह पर भी नहीं ला सकते न आंखों में। जबकि वे आप ही के आस-पास डोलते रहते हैं बासी छाया की तरह अपनी तक में। मैं अन्दर तक खौफ से भर गया। मुझे लगा ये क्षण मेरे हाथों से फिसलते जा रहे हैं।

"क्या सच में तुम अपने गांव नहीं जाओगे?" घड़ी की तरफ देखते हुए उसने कहा। गाड़ी छूटने में सिर्फ पन्द्रह मिनट शेष थे।

"नहीं।" मेरे होठ आगे कुछ नही बोल पाये।

"यहां अकेले किस तरह रहोगे? जबकि सभी दोस्त भी जा चुके होंगे।" इस बार उसके होठ कांपे थे।

"बहुत चीजें और जगह हैं जहाँ हम गये थे। उन्हें छूकर, वहां जाकर मैं सुख ढूंढ लूंगा।"

उसके होंठ कुछ बोलते-बोलते कांपकर रहे गये और उसने आंखें मुझ पर गड़ा दी। होठो के शब्द आंखो में आकर ठहर गये। पलकों पर उकड़ू बैठे वे बाहर कूदने की प्रतीक्षा मे थे। वह मेरी तरफ देख रही थी अबोले, एकटक, लगातार। मैं कुछ नही कह पाया। गाडी ने एक लम्बी सीटी दी और रेंगने लगी धीमे-धीमे। मैंने उसका सिर और हाथ दबाकर छोड़ दिया।

मै प्लेटफार्म पर खड़ा था। वह गाडी में खडी थी और गाडी जा रही थी। उसका उठा हुआ हाथ लिए, मुझे उठे हुए हाथ के साथ छोड़ते हुए।

"सुनो, । अब मैं बड़ा हो गया हूं । मेरे पास होते हुए भी दुख मुझे छू नही पाता । दुख कोई सपना नही होता है, सपना भी हम सुख का ही देखते हैं, उसे ही बुनते हैं । दुख तो ठोस होता है अपने धारदार पंजों के साथ । जब हमें यह मालूम हो कि दुख कभी खत्म नहीं होगा । हमेशा रहेगा, लगातार । तब हम सुख का सपना भी नही देखते । ये मेरे दुख के नही, भूख के भी दिन है । चीजें अपनी जगह होते हुए भी अपनी जगह नही हैं । यह बड़ी भयावह स्थिति होती है जब हर चीज विश्वास से परे दिखायी देने लगती है । ऐसे में इन चीजों से परे चले जाना ही बेहतर होता है । क्योंकि इनका भरोसा नही कब अचानक ये आपको दबोच लें जहां आप सिसक भी नही सकते । और इनसे परे आप रो सकते हैं, चिल्ला सकते हैं । तब पीड़ा भी ठहर जाती है चाहे थोड़ी देर के लिए ही सही ।

सड़क धूप मे अलसायी पडी थी एकदम बेसुध । छाया पेड़ों से दूर बहुत दूर सरकती जा रही थी । कही कोई आहट नही । हवा पत्तों मे दुबकी पडी थी । बीच–बीच मे किसी वाहन का होरन सन्नाटे को चीर जाता । मैं बीच सड़क पर धीमें कदमों से आगे बढ रहा था । भूख लगी हुई थी और थकान भी । कैसी अजीब बात है कि समय अपनी जगह से सरकता रहता है लगातार । उम्र भी देखते–देखते फिसलती रहती है शरीर को अपनी जद में लेते हुए लेकिन मन पर उसका कोई असर नही होता । वह उन्हीं स्मृतियो के आस-पास डोलता रहता है जो वर्षों पहले हमने सहेजी थी एक, फिर एक और फिर एक । सड़क पर चलते हुए मेरे शरीर के हर हिस्से से पीडा फूट रही थी । मैं बाहर जा रहा था चाय पीने और एक दो तली हुई स्लाइस पेट मे डालने के लिए ।

भूरे मैले आलोक के साथ बाहर थड़ियो पर गर्द जमी हुई थी । मैं एक कुर्सी पर पीठ टिकाकर बैठ गया । सामने एक छोटी सी पहाडी थी अपने सीने पर एक खण्डहरनुमा महल को बिठाये हुए । पहाड़ी के ठीक नीचे कई मंजिला एक मन्दिर बन रहा था जिसके आस–पास मिट्टी के ढेर

थे। और उसके ठीक बायी ओर से विश्वविद्यालय परिसर प्रारम्भ होता था। मेरी निगाह उसकी इमारत पर आकर ठहर गयी। मैं देखता रहा लगातार, आखे इधर उधर घुमाता हुआ। सहसा मुझे लगा मैं जकड़ता जा रहा हू इन सबके बीच। क्योंकि मै सोच रहा था अब मै यहाँ से चला जाऊंगा। यह सोच ही दरअसल मुझे असभव लगा। मैं एकदम डर गया। मुझे लगा इससे हटकर मैं देख नही सकता, सोच भी नही। कुछ चीजें, कुछ चेहरे या कुछ सुख दुख के क्षण होते हैं जो आपके आस-पास मंडराते रहते हैं लगातार, बार बार और आप उनको बराबर अनदेखा करने की कोशिश करने की कोशिश करते रहते हैं। लेकिन वे आपसे इस कदर परिचित हो जाते हैं कि अदेखे, अजाने भी आपसे मुखातिब होते रहते हैं और एक दिन जब सचमुच वे आपके सम्मुख आकर खड़े हो जाते है तो आप चौंक उठते हैं कि अचानक यह सब कैसे हुआ ? इसकी तो मैंने कल्पना भी नही की थी। शाम में भरपूर जीना चाहता था। कई दिनो पश्चात् व्हिस्की पीने की तीव्र इच्छा हुई। हालांकि इच्छा तो रोज होती है पर सिर्फ इच्छा से क्या हो। जब आपके पास चाय पीने को पूरे पैसे नही हो तो सब कुछ सिमटकर रोटी पर टिक जाता है। मुंह को गोल करके होठो पर जीभ फेरकर बार-बार मै उस भूले हुए स्वाद को तय करने की कोशिश करता रहा हू इन पिछले वर्षों में, जो गाँव मे माँ के हाथ की रोटियो मे था। मुझे बचपन के वे दिन अक्सर याद आते हैं जब कभी घर मे कोई अच्छी चीज खाने को आती और वह थोड़ी मिलती तो मैं बराबर यह सोचता रहता कि बड़ा होने पर बस यही चीज खूब खाऊंगा। हर बार ऐसा होता। लेकिन अजीब बात है कि बड़े होने पर हमारी उम्र का बहुत अधिक हिस्सा जद्दोजहद मे ही निकल जाता है। हम सोचते हैं सब कुछ पाने के बाद सन्तुष्ट हो जायेंगे। जबकि सच में तो यह हमारा भ्रम ही होता है क्योंकि जब फुरसत के क्षणों मे अपनी हथेलियाँ फैलाकर देखते हैं तो वहाँ रेखाएं भी मिटती नजर आती हैं तब हम नये सिरे से उन रेखाओं

हैं या खाना-खाये हुए। पेड़ो के बीच से, सड़क पर से, आपके बगल से, ऊपर से, वह लगातार बीतता रहता है आपको बिताते हुए।

उसने कहा था "मैं जरूर लिखूंगी और जल्दी।"

मैं यही भटकता रहूंगा, देर तक। और इसी चौकोर चिकने पत्थर पर सो जाऊंगा। उसके शब्द भी यही कहीं भटक रहे होंगे लेकिन मेरी पहुंच से बहुत दूर। यह वह जगह है जहाँ हम पहली बार मिले थे, बार-बार मिले थे। तब भी मैं यहीं था और अभी भी यहीं हूं। तब हमारे बीच शब्द थे। नही बोलते हुए भी बहुत कुछ बोल जाने वाले। हमारे आस-पास मंडराते हुए। आज मैं डोल रहा हूं उन शब्दों को पकड़ने के लिए मौत के दरवाजे तक।

मैं उसी चौकोर चिकने पत्थर पर करवट बदल रहा हूं। नीद के लिए नहीं शब्दो के अर्थ के लिए नही, सुख के लिए नही, रोटी के लिए भी नही। मैं भी नही जानता आखिर वह क्या चीज है जिसे मैं भूलना चाहता हूं लेकिन भूलता नहीं।

"सुनो, तुमने कहा था। मैं जरूर लिखूंगी और जल्दी।"



चौराहे पर एक आदमी

अचानक एक आदमी रुका और चौराहे के बीच में बने गोल घेरे में खड़ा होकर जोर-जोर से भाषण देने लगा। भाषण के नाम पर वह अण्ट सण्ट गालियां बक रहा था। देश को, सरकार को, यहां के लोगों को और स्वयं को जो इस देश में पैदा होने का शाप भुगत रहा था। वह हाफ रहा था, तपती धूप के कारण कनपटियों से लगातार पसीना चू रहा था लेकिन शब्द उसके मुंह से बराबर झर रहे थे। बीच में एक लम्बी हिचकी आयी तो क्षण भर के लिए उसका हाथ ऊपर उठा और एक झपाटे में मुंह का पसीना सूंत दिया।

अगल-बगल, आगे-पीछे से गुजरने वाला हर व्यक्ति उसकी आवाज साफ सुन सकता था पर उसकी बातों में शायद ही किसी को दिलचस्पी हो सकती थी। क्योंकि उनमें से किसी के पास भी रुकने की फुरसत नहीं थी। वैसे फुरसत उसके पास भी नहीं थी। वह बराबर इस बात से चिन्तित था कि उसकी बात को लोग समझ नहीं रहे हैं।

तपती धूप और पसीने के कारण उसका हुलिया किसी झुलसे हुए मुरदे सा हो गया था। उम्र की खरोंच चेहरे से रगड़ खाकर अपनी पहचान खो चुकी थी इसलिए यह तय कर पाना मुश्किल था कि उसकी उम्र क्या है। वह पच्चीस का भी हो सकता था या तीस चालीस का भी। वैसे असल में तो

इस जैसे व्यक्तियो की कोई उम्र नहीं हुआ करती सिर्फ एक शरीर हुआ करता है और.वह भी तब तक जब तक कि उससे काम लिया जा सके। यह भी आज तक उसकी कई पीढ़ियो मे नही हुआ था कि कोई चौराहे पर इस तरह खडा होने की जुर्रत कर सके।
उसके चौतरफ लोग दौड रहे थे, भाग रहे थे, चीख रहे थे, चिल्ला रहे थे और वह अब भी वहां खडा था हाफता हुआ सख्त और क्रोधित मुद्रा मे। उसे देखकर कहीं से भी दया और सहानुभूति का भाव नहीं जागता था और न भावुक हुआ जा सकता था बल्कि वह एक आतंक और खौफ का आकार ग्रहण करता जा रहा था।
मुट्ठिया कसी हुई थी और शरीर तना हुआ। अचानक उसके हाथ अपने शरीर पर रेंगने लगे। उसने कमीज के बटन टटोले हालांकि बटन के नाम पर वहां कुछ नहीं था पर उसने उस जगह को यो टटोला जैसे बटन खोल रहा हो फिर बटन की सीध मे एकदम उसे चीर दिया। पानी से गले हुए कागज की तरह कमीज लीर लीर हो गयी। इसके बाद पतलून के पायचे टागो से निकालकर सड़क के बीचोबीच फेंककर जोर से हंस दिया। उसके शरीर पर सिर्फ एक धारीदार जांघिया बचा था जिसमे उसकी टांगे धुंए खायी बल्ली की तरह एकदम स्याह और अकड़ी हुई खड़ी थी। अब उसके हाथ जांघिया के नेफे मे नाड़े की गांठ टटोल रहे थे। अगुलिया चारो तरफ घूम गयी गांठ मिली पर खुली नही। एक झटके से उसने नाड़े को खींचा तो पट की आवाज के साथ सरसराकर वह उसके हाथो मे इकठ्ठा हो गया। क्षण भर बाद वह उससे भी मुक्त हो चुका था।
वह चौराहे के ऐन बीच मे खडा था एकदम नगा। अन्दर से अपने को उत्तेजित महसूस करता हुआ पर बाहर से उसका शरीर लटककर झुका हुआ था। कमर का खम्भ उसके ऊपरी भाग को सभालने मे असमर्थ था। गोडे भी बीच मे से झुके हुए थे जैसे बरसो से आन्धी पानी की मार से जर्जर होकर गिर गये किसी महल के दो खम्भे बचे हों और वे भी बस हाथ लगाया कि गिरे।

"सालों, कमीनो। यह मैं नही तुम्हारा देश खड़ा है एकदम अलिफ नंगा, कर लो कुछ करना हो जो।" अचानक उसमे शक्ति और सासत वापरी उसके मुंह से शब्दों के गोलों के साथ थूक की पुच्चियां छूट रही थी। चौतरफ मोटर कारें घरघरा रही थी। लोग आ जा रहे थे पर उसकी तरफ किसी का भी ध्यान नही था सिर्फ पैदल चलने वाले दो चार आदमी और घर से भागे बेलगाम छोरे उसे छेड़ रहे थे। हालांकि वह जिस चौराहे पर खड़ा था वह शहर के संभ्रात लोगो के आवागमन का मुख्य केन्द्र था और इस तरह की घटना वहां पहली बार हो रही थी कि एक आदमी पूरे होशोहवाश मे चौराहे के बीच एकदम नंगा होकर उन सबको गालियां बक रहा था। कुछ भी अनुमान लगाया जा सकता था कि वह ऐसा क्यो कर रहा था जैसे या तो वह किसी के द्वारा सताया हुआ था या नौकरी से निकाल दिया गया था अब तक भी उसे नौकरी नहीं मिली आदि-आदि। लेकिन असल में देखा जाये तो कौन सताया हुआ नही है बल्कि ये लोग ज्यादा सताये हुए हैं। किसी को बंगले की डिजाइन पुरानी पड़ गयी इस बात की चिन्ता है तो किसी को कार नहीं होने की तो किसी को पदोन्नति नही मिलने की और जिसके पास ये सब हैं उन्हें अपनी घटती यौन क्षमता की चिन्ता अधिक है। इस तरह इन सबके दुःख का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है लेकिन चौराहे पर खड़े इस आदमी के दुःख का कारण तलाशना आसान नही था क्योंकि असल मे तो इस जैसे आदमियों का पैदा होना ही दुःख का कारण है। सुख के कोने इन जैसो के लिए नही हुआ करते हैं और फिर इनके दुःखों को कहां तक दूर किया जा सकता है क्योंकि इनके रास्ते अधिक कठोर और जोखिम पूर्ण होते हैं जहां चलना नही घिसटना होता है ताउम्र और वह भी सिर्फ रोटी के लिए। इसलिए इस तरह के आदमी को दुःख आसानी से घेर सकते हैं जिन्हे देखकर कोई भी संभ्रात आदमी दुखी और भावुक नहीं हो सकता उनके दुःख इनके दुःख से बडे दुःख होते है सिर्फ रोटी के दुख नही। खैर, कहने का तात्पर्य है कि दुख तो सभी के होते है पर इस तरह सरेआम चौराहे पर खड़े होकर गालियां देना कहां तक ठीक है। शायद

यही बात वे सब अपने मनों में सोच रहे थे। लेकिन उसके गालिया बकने के कारण इससे जुदा भी हो सकते हैं और अधिक महत्वपूर्ण भी, अपने से परे समूचे देश से सम्बन्धित जिसके कारण वह इतना परेशान और दुखी है। अब तक उसके आस-पास छोटी-मोटी भीड़ जुट गयी थी, और वह अब कुछ गन्दी हरकतें भी करने लगा था उसका भाषण यथावत चालू था—"हा तो मैं कह रहा था—"अब इस देश का क्या होगा ?" नाक से बहते पानी को उसने एक सड़ाके से ऊपर खींचलिया लो जुकाम भी लग गयी। बस यह भी होनी थी। मैं मेरी तो मुगत लूगा पर इस देश के बारे में सोचकर चिन्ता होती है क्योंकि अब तो यह नपुंसक भी होता जारहा है। इस बार वह घोर निराश और विषादपूर्ण लगा और अब तक तना हुआ उसका चेहरा लटकर ढीला पड़ गया।

अपना सिर दोनों हाथों से दबाये हुये वह लड़खड़ा रहा था—"देखिए अब मेरी हालत बिल्कुल नही है इसलिए मैने सोचा है कि आपको सही जानकारी से अवगत करा दूं और एकदम नगा हो जाऊ ताकि आपके भीतर कुछ तो रेंगे।" इस बार वह थोडा भावुक हो उठा और कुछ दुःखी भी। पहली बार उसकी आखो मे गीलापन तैर आया था। यह अनुमान लगाना मुश्किल था कि उसने पिछले कितने दिनो से कुछ नही खाया है क्योंकि पेट की जगह एक गोल गहरा गढ्ढा बन गया था जैसे किसी ने मेन होल का ढक्कन उतार लिया हो।

घुटनो मे माथा दिये वह धम्म से नीचे बैठ गया और जोर-जोर से रोने लगा। वह बुरी तरह हाफ रहा था और रो रहा था एक अबोध शिशु की तरह जिसके सम्बन्ध में यह तय कर पाना मुश्किल होता है कि वह भूख से रो रहा है या किसी शारीरिक पीड़ा से या अन्य किसी दुख से। उसका रोना एकदम नरम और स्वाभाविक होता है।

उसकी समूची काया हिल रही थी। और काप रही थी। शायद उसे लू लग गयी थी इतने मे पुलिस का एक सिपाही उसके नजदीक आया, और डडे से

ठेलने लगा। "उठ साले यहां क्या भाषणबाजी कर रहा है अभी थाणे में डंडा करता हूं तब बोलगा।" सिपाही हाथ पकड़कर घसीटने लगा। उसके कड़ियल शरीर ने प्रतिरोध किया लेकिन ज्यादा नही। किसी तरह खड़ा हुआ तो सिपाही ने दो चार डंडे वहीं जमा दिये। इस बार वह अचानक फिर उत्तेजित हो उठा और अण्ट-सण्ट गालियां बकने लगा—"सालों अब यही गत होनी थी, देश नंगा हो गया, देश रो रहा है बस अपने ही लोगों से पिटने की कसर बाकी थी वह अब पूरी हो गयी।" और वह आदमी बुक्का फाड़कर जोर-जोर से रोने लगा।

मैं अन्ततक तय नही कर पाया कि आखिर उस आदमी को दुःख क्या था?



बावजूद इसके

उसने कमीज की सलवटें ठीक की और हाथों को जोर से अपनी बगलों मे कस लिया गुलगाठ की तरह। गहरी काली सड़क पर रोशनी की तेज चौंध गिर रही थी। सूरज अपनी बीमार, पीली सांस नीचे फेंककर कही कोने मे दुबक गया था इसलिए आकाश एकदम घना और काला था। कमीज और पैंण्ट आज ही धोए थे पर उन पर पड़ी सलवटों पर निगाह पड़ते ही उसका शरीर सिकुड़कर आड़ा–तिरछा कई सलवटों मे ऐंठ गया।

कन्धे से बन्दूक लटकाए सिपाही सड़क पर टहल रहे थे। उनकी हल्की सी सीटी की आवाज सुनते ही वह चौंक कर अतिरिक्त सतर्क हो जाता। एक दूसरे की रगड से बचते हुए लोग रग बिरगे कपड़ो मे पैदल आ जा रहे थे। "इन सबके बीच वह सफेद धुली हुई कमीज पर अटके मैल के बदनुमा चकत्ते की तरह है।" अपने सोचे हुए इस वाक्य पर वह मन ही मन खुश हुआ कि अभी उसमें सोचने की शक्ति बाकी है, जो वह पिछले दिनो लगातार खोता रहा है।

इस समय जहाँ वह खड़ा था उसके ठीक सामने दो सिपाही बन्दूक की तरह एकदम सीधे अकड़े खड़े थे। उनके चेहरे आग और धुए से ऐंठी गीली लकड़ी की तरह मरोड़ खाए हुए बदरग हो गये थे। एकबारगी उसकी इच्छा हुई कि उनके सारे कपड़े उतारकर आईने के सामने उन्हे खड़ा कर दे और

वह है कि इस व्यस्त सड़क पर जिनकी चौकसी के लिए तुम खड़े हो असली डर उनसे है मुझसे नहीं।

'डर' शब्द के जेहन में उतरते ही आँखें मुँद गईं और उनमें कुछ रड़कने लगा। रड़कन के साथ शरीर भी घूजने लगा। मानो समूचे वातावरण में कोई जहरीली गैस छा रही हो और उसमे लोग डूबते जा रहे हैं, अन्धे होते जा रहे हैं, एक दूसरे के ऊपर गिर पड़ रहे हैं। एक अकेला वह बचा है, हल्का फुल्का, हवा की तरह भारहीन तैरता हुआ। इस सोच के उकसते ही थोड़ी सांसत बापरी और खोप की सीटियों सी तीखी गुनगुनाहट होठों पर तैर गई। कलफ लगी एक कड़कदार मुद्रा बनाई और जेबों में हाथ ठूँसे वह इधर-उधर टहलने लगा जैसे यों ही शहर के मुआयने पर निकला हो। अपने ही अगल-बगल झाककर उसने खुद की मुद्रा को फिर नापा और गौर से सिपाहियों की तरफ देखने लगा।

'आखिर वे उसे क्यों पकड़ेंगे ? जबकि उसने कोई अपराध नहीं किया।' मन ही मन उसने इस वाक्य को दुहराया और खुद को तसल्ली दी।

स्वयं को दी इस तसल्ली पर कुछ राहत सी मिली और निस्संगता से वह दाढ़ी-मूँछों पर हाथ फेरने लगा। दाढ़ी पर हाथ फिरते ही आशंका और डर के कीड़े जाने कहां से रेंग आये और समूचे शरीर को तीखे धारदार पंजों से कुतरने लगे। पुलिस को अखबार में रोज एक खतरनाक मुजरिम की तलाश थी और वे उसे शीघ्र ही पकडने का दावा कर रहे थे। उसका आकार वे उसमें फिट कर सकते हैं। 'हर रोज यह लगता और इसलिए उसने धीरे-धीरे अखबार की तरफ देखना भी छोड़ दिया। किन्तु कॉफी हाउस या रेस्तरां में भी लोगों के मुँह से यही चर्चा सुनते-सुनते डर उसके भीतर गुंजलक मारकर बैठ गया और उसने अपने को कमरे के आकार तक समेट लिया। लेकिन दो चार दिन बाद वहाँ भी मकान मालिक शक की निगाहों से देखने लगा था। आखिर एक दिन उसने पूछ ही लिया—'कहो महाशय क्या किसी की हत्या कर आए जो कमरे से बाहर निकलना भी

छोड दिया ।' भीतर कीड़ों पर काटे उग आए और वह लहूलुहान हो उठा, पसीने के घोरे फूट पड़े । बूटो की नोकदार कीलें और सीटियां माथे मे बज उठी और होठों मे अटके बोल वही झुलसकर सिसक उठे ।

उस शाम जब वह कमरे से बाहर निकला तो सब उसी की तरफ देख रहे थे, जैसे महीनों, बरसो बाद निकला हो और अब तक जिस खतरनाक मुजरिम की शहर को तलाश थी वह वही था । सब अपने-अपने बल्बों की तेज रोशनियों से उसके चेहरे को टटोल रहे थे । 'उसने जरूर कोई अपराध किया है, क्योकि इतने आदमी एक साथ गलत नही हो सकते ।' वह एक आदमी के करीब जाकर खड़ा हो गया जो बहुत देर से उसे घूर रहा था। निकट जाकर खड़े होते ही उस व्यक्ति ने नाक भौह सिकोड़ी और जल्दी ही वहा से भाग छूटा। वह उदास हो उठा। उस रात अकेले मे वह सिसक उठा और भीतर उगा अपराध बोध अधिक गहरा हो गया ।

पिछले कुछ दिनो से उसे लगने लगा था कि वह जहरीले जबडों के बीच फसता जा रहा है । हर पुलिस वाले और अच्छे कपड़े पहनने वालो से डरने लगा । ये उसके घोर बेकारी और भूख के दिन थे । अक्सर वह भूख से असहाय हो उठता और ताफड़े तोड़ने लगता । रोज हर रोज यह होता । उसे स्वय नही मालूम था कि पिछले दिनों कब उसने भरपेट रोटी खाई थी । पड़ोस के चूल्हो से उठती गध से वह रोटी के आकार एवं उसके स्वाद को तय करने की कोशिश करता रहता । अब हर चीज उसके लिए रोटी के आकार मे बदलने लगी थी। सपने मे भी वह रोटी के पहाड़ पर चढकर उसे कुतरता और पके हुए मास के दरिया मे गोते लगाता रहता ।

आज भी वह और दिनों की तरह भूखा और निहत्था था । त्योहार होने के कारण बाजार मे काफी चहल-पहल थी । दुकानें मिठाईयो से सजी थी और पिछले दिनों शहर मे घटी आपराधिक घटनाओ के कारण पुलिस की भी माकूल व्यवस्था थी । खाली जेब और पेट के साथ वह भी सजे-धजे लोगो के साथ बाजार की भीड़ मे शामिल मिठाईयों की गध नथुनो से भर

कर उनके नाम और स्वाद तय करता हुआ भूख को बहला रहा था और भूख थी कि जिद्दी बच्चे की तरह मनाने पर ज्यादा हाथ पांव पटक रही थी। उसे स्वयं विश्वास नहीं हो रहा था कि वह एम ए. फर्स्ट क्लास है। नौकरी पर लगे हुए अपने मित्रों द्वारा कई बार वह इसी कारण उपहास का पात्र भी बनता रहा है। दूसरे चौराहे पर दायीं तरफ घूमा तो कंधे से बन्दूक लटकाए चार सिपाही एकदम सामने पड़ गये। सिपाहियों को देखते ही वह घबरा उठा, चाल धीमी हो गई और सांस तेज। पलक मुंद गयी और दम घुटता हुआ महसूस हुआ। पल भर में तीखी नोकदार संगीनें उसकी आंतों तक उतर गई। वह फड़फड़ाया, ताफड़े तोड़े पर गिरफ्त से छूट नहीं पाया, जोर से चिल्लाना चाहा पर आवाज तालू से चिपक गई। चलने की कोशिश की तो लगा वह सिर्फ घिसट सकता है चल नहीं। वह वहीं पड़ा रहा। मरणासन्न आदमी की तरह तड़फता हुआ जो कुछ कहना चाहता है पर कह नहीं पाता। तब वह एकदम निढ़ाल होकर सांस छोड़ देता है, जो होना होगा सो होगा की मुद्रा में चारपाई के दोनो तरफ खुले हाथ लटकाकर।

अगले ही पल आंख खुली तो सांसत वापर चुकी थी। आखिर वह एक पढ़ा लिखा और समझदार युवक है। मन ही मन खुद को ढाढस बन्धाया। लोगों का आना-जाना बरकरार था। पसीने के घोरे सिकुड़कर टपक रहे थे। भीतर ही भीतर नसें तड़कीं तो वह अकड़कर खड़ा हो गया। 'उसका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता।' उसने फिर सोचा और दोनों हाथ जेबों में ठूसें सबकी तरफ उपेक्षा से देखता हुआ दूसरी तरफ चल दिया। एक बारगी वह भूल सा गया कि वह कहा से आया था और कहा जा रहा था। एकाएक कोई जवाब नहीं सूझा तो उसने उचटती सी निगाह सिपाहियों पर डाली वे उसी की तरफ गौर से देख रहे थे।

'उसके सामने वे सब मूर्ख हैं। उसे किसी से भी नहीं डरना चाहिए, जबकि उसने कोई अपराध नहीं किया, किसी की हत्या नहीं की। क्या भूख और

निराशा में आदमी इतना डरपोक और कायर भी हो सकता है कि सारा ज्ञान और सारा आत्मविश्वास खो दे और साफ स्वच्छ हंसी पीली पड़कर दम तोड़ दे। उसने याद करने की कोशिश की कि हंसी कब उससे मरकए गाय की तरह खूंटा तुड़ाकर भाग गई थी। क्या वरदी में होने के कारण सिपाही कभी भी किसी को पकड़ सकता है? पैसा और नौकरी में होने के कारण मित्र हंसी उड़ा लें, मखौल कर लें और वह विरोध भी नहीं कर सके। जबकि वह इस तरह जीने की कोशिश करता रहा है उसे दुनिया से कोई मतलब नहीं है। कीर्कगार्द ने कहा था कि 'आत्मा वह है कि हम इस तरह जी सकें जैसे हम मर गए हैं दुनिया की तरफ से मृत।' लेकिन दुनिया है कि बराबर इस बात का अहसास कराती रहती है कि तुम इस तरह नहीं मर सकते और हम इस तरह तुम्हें जीने भी नहीं देंगे।
उससे थोड़ी दूर सड़क के किनारे एक वृद्ध अपने गोडों में माथा दीए छटपटा रहा था, आगे सरक रहा था, ताफड़े तोड़ रहा था। उसके चौतरफ दस-बीस लोगों की भीड़ जुटी हुई थी। विचित्र सी दया और सहानुभूति भीड़ के चेहरों पर डोल रही थी। बगल में लोगों की प्रेमिकाएँ और पत्नियाँ मुँह से रुमाल सटाए करुणार्द्र होकर उन्हें वहां से हटने का अनुरोध कर रही थीं। बुड्ढा समूचे शरीर को गांठ की तरह गोलाई में मरोड़कर हाथ पावों को उल्टा सीधा कर रहा था। धोती की लाग ढीली होकर नीचे लटक आई, उसमें से पानी की बूंदें टपककर बैल मूतणी बना गई। मुँह से लार के साथ झाग के कतरे फफोले बनकर फूट रहे थे। बुड्ढा मर रहा था। उन सबके बीच, एकदम अकेला, अनोखे जिनावर की तरह। उसने बुड्ढे को देखा और डर गया। 'नहीं वह इस तरह मरना नहीं चाहेगा।' कांटेदार पंख बोझे भीतर से फूटकर चेहरे पर उग आए। वह लहूलुहान हो उठा। 'नहीं, इस डोकरे को भी इस तरह नहीं मरने देगा। पहली बार उसमें सासत बापरी और वह सिपाहियों की तरफ भागा—'देखिए, एक आदमी मर रहा है सरे आम, आप कुछ कीजिए।'
सिपाहियों ने सिर से पैर तक गौर से उसका मुआयना किया। उसके चेहरे

की तरफ देखा और हंसे और भोगालने लगे। वह कुछ समझा, कुछ नहीं। आखों के डोरे लाल होकर जहरीले कीड़ों मे बदल गए। 'देखिए मैं आपसे निवेदन कर रहा हूं।' किसी तरह दुबारा बटोरे गए साहस की पोटली फेंकने से पहले ही एक सिपाही ने उसे बीच में ही लपककर चिथड़े-चिथड़े कर दिए।

'त्योहार के दिन ज्यादा बक-बक मत करो। भाग जाओ यहां से, नही तो तुम्हे भी अभी बन्द कर देंगे।'

वहा से लौटा तब तक बुड्ढे के हाथ लटककर धरती पर टिक गए थे। उसने वहा खड़े लोगो से कुछ करने को कहा तो वे इस तरह दूर हटते गये जैसे उनके पांवो के बीच जहरीले साप छोड़ दिए गए हो। करुणार्द्र हो उठी प्रेमिकाओं और पत्नियों का ध्यान दूसरी तरफ मोड़ने के लिए वे उन्हे जोक सुनाने लगे। भागने के कारण वह हांफ रहा था। सांस के गोले नाक मे अटक गए थे और रह रहकर फूट रहे थे। बुड्ढे के घुटने तिरछे मुड़ गए और दोनों हाथ अकड़कर जाघों के बीच जोर से कस गए। उकडू होकर इधर-उधर कुछ देखने का प्रयास किया तो एक लम्बी हिचकी के साथ सहसा वह थोड़ा ऊपर उछला और अपने ही फैलाए गन्दे लिसलिसे पानी के बीच तिरछा होकर ऊट की तरह गिर पड़ा।

'बेचारे का खेल खतम हो गया। एक आवाज तीखे नोकदार पत्थर की तरह कानो से टकराई और उसके शरीर मे रेगते कीड़ो ने वहीं दम तोड़ दिया। घबड़ाहट बढ़ने के साथ ही चौतरफ विशालकाय-दैत्यों की घर्र-घर्र सुनाई दी। लगा उसके शरीर मे सैकड़ो घाव हैं, जिनमे मरे हुए कीड़ो की सड़ाध असह्य होती जा रही है। डोकरे की मौत और उसका दुख एकमेक हो गए थे और वह समझ नही पा रहा था कि यह सड़ाध उसके भीतर मरे हुए कीड़ो की है या डोकरे के शरीर से आ रही है।



तीसरी सांस

शिवदयाल खाट पर पड़े-पड़े उकता जाते लेकिन बाहर कहीं निकलने का मन ही नहीं करता। तिबारे मे भी शरीर झुलस कर रह जाता। इधर जोड़ों में भी दर्द रहने लगा है। मालिश करने से जरूर थोड़ी राहत मिलती है। पर जब से रामप्यारी सुरग सिधारी है देखभाल करने वाला भी कोई नही रहा।

छप्पर का फूस अलग उड़ गया। एक दो बार जोर की आधी आई तो जगह-जगह से 'मोखे' नजर आने लगे। कल ही चूल्हा सुलगा रहे थे तो हवा के तेज झोंकें से नीचे पड़े फूस मे एक-दो चिन्गारियां गिर गई। जल्दी से उठकर बाल्टी उंडेली तब जाकर आग काबू मे आयी नहीं तो रह रही सही भी खाक हो जाती। ऊपर से इस खासी के मारे भी हाल बेहाल हो जाते हैं। बीड़ी का एक कस खीचते ही शुरू हो जाती है और बीड़ी है कि ससुरी लाख कोशिश करो पर नहीं छूटती। कई बार तो खासी इतनी लम्बी खिच जाती है कि लगता है सांस अब गई, अब गई। और इस बार यह गरमी, इस वजह से शहर नही जाने की सोच रहे हैं। हर महीने पाच तारीख को पेंशन मिलती है। दो चार महीनो की एक साथ लेनी चाहो तो बाबू लोगों के चक्कर लगाते रहो, वहां तो बस पांच दस रुपये हथेली मे रखो तब जाकर सुनते हैं। अब इनसे कौन पूछे कि सौ रुपल्ली तो सारी

मिलती है उसमें से भी तुम्हें दें तो फिर क्या बचा? और फिर यह बुढ़ापा। जब भी पेंशन लेने जाते हैं तो शिवदयाल का सिर चकरा जाता। किसी का एक अंग सुन्न हो गया, किसी की आंख चली गई और किसी का शरीर बीच में से झुक गया। दो महीने पहले रामबाबू का सारा शरीर ही लकवे में आ गया, उसका बेटा रिक्शे में बिठाकर लाया था। शिवदयाल अतीत में गोते लगाने लगते। कभी वे और रामबाबू वर्षों तक एक साथ रहे थे। कितने दिलेर थे रामबाबू, एक बार डाकुओं से मुठभेड़ हो गयी तो दोनों खूब जूझे थे। लेकिन सारा श्रेय दरोगा जी ले गये और उनकी पदोन्नति हो गई थी। और वे दोनों रिटायर होने तक कान्सटेबल ही रहे। रामबाबू को इस हालत में देखकर वे अन्दर तक कांप उठे थे। रामबाबू ने भी इनकी ओर देखा, होंठ कुछ फड़फड़ाए लेकिन बोल नहीं फूटे, आंखों में पानी की बूंदें छलक आईं, शिवदयाल ने भी बीड़ी सुलगाकर एक कश लिया और कुछ कहना चाहा कि ऐसी खांसी उठी कि काफी देर तक होश नहीं आया। जब भी पेंशन लेने आते तो हर बार उनमें से कई चेहरे गायब रहते। शिवदयाल मन ही मन सब समझ जाते। दफ्तर के सामने बिछी दरी पर सारे पेंशनर बैठे रहते और बारी-बारी से नाम पुकारने पर रजिस्टर पर दस्तखत कर रुपयों को दो तीन बार गिनते हुए बेटा, पोता जो भी साथ होता उसे थमा देते। उन्होंने भी कई बार लड़के से कहा लेकिन वह कहता तुम्हें जरूरत ही क्या है? किस बात की कमी है, मेरे पास रहो, क्यों, सो रुपल्ली में जी अटकाते हो।

सच भी है, अब उनके भी हाथ पांव कांपने लगे हैं, आये दिन कुछ न कुछ हो जाता है, गांव पड़ोस के भी टोकने लगे हैं, बाबूजी अब क्यों यहां अकेले पड़े हो, अन्तिम क्षणों में तो बेटों के पास रहो, किस बात की कमी है। एक तो एम.एल.ए. है ही दूसरा भी लग जायेगा, भगवान के भजन करो। उनकी भी कितनी बार इच्छा हुई बेटों के पास जाकर रहें, उनकी मां जिंदा थी तब और बात थी। कैसी गऊ थी बिचारी, थोड़े में से गृहस्थी इस ढंग

से चलाती कि भूखे उठे पर कभी भूखे सोये नहीं। शहर मे भी रहे तो मोहल्ले टोले मे किसी से लड़ाई तो दूर ऊँचे से बोली भी नही। खुद ने भी क्या कम पापड बेले। काका की मार से तग आकर पन्द्रह बरस की उमर मे ही घर से भाग आए थे। माँ बाप पहले ही गुजर चुके थे। शहर मे आते ही पुलिस मे भर्ती हो गये।

बस स्टेण्ड पर उतरकर धोती की पोटली कन्धे से लटकाए, एक हाथ मे छडी थामकर धीरे-धीरे बाहर सडक पर आ गये। कौनसा ज्यादा दूर है, अभी पहुच जाते हैं। सोचते हुए सडक पर सीधे हो लिये। इतनी गरमी मे भी आखिर वे चल ही दिये, सोचा एक तो बिना पैसे महीना कैसे कटेगा और दूसरे कुछ दिन बेटो के पास भी रह लें।

घर पहुंचते ही बाबा आ गये, बाबा आ गये दोनो बच्चे उनके पैर छूने दौड़े, बहू भी आयी लड़का कहीं गया हुआ था। उनकी आखें छलछला आयी 'समुरा सब सुख मिला पर रामप्यारी अपनी आखो से नही देख पायी। बहू के आते ही एक महीने बाद ऐसी बीमार पडी कि फिर खाट से उठी ही नही। अन्तिम समय मे भी कितनी प्रसन्न थी। आखों मे आसू भरते हुए कहा था।' बड़के के बापू मेरा सारा शृगार करना। कितनी सुहागवन्ती हूं कि माग मे सिन्दूर भरे जा रही हू। वे भी गले तक भर आए थे पर आखें पोंछकर रह गये, नही बड़के की माँ ऐसे मत कहो, अभी तो तुम्हे छोटे का ब्याह भी करना है।

पर उतरते फागुन की चौथ को वह सब छोड़कर चली गयी। शिवदयाल एकदम सुन्न होकर रह गये थे। सारा दर्द, सारी पीड़ा अपने अन्दर समेट ली और उसी दिन से उनके चेहरे की लकीरें और गहरी होती चली गईं। गुवाडी के नीम से लगकर वे घन्टो रोए थे। नीम का वह गाछ भी उनके साथ सारे दर्द को अपने कड़वेपन मे समेटे हुए खड़ा था।

थोडे दिन बाद ही बड़का एम.एल.ए. हो गया था और दो बच्चे भी हो गये, एक पाचेक साल का होगा और दूसरा तीनेक बरस का। गोरे तन्दु-

स्वस्त पोतों को देखकर उनका मन हरिया गया । सब परभू की माया है, एक धुपकारी देते हुए उन्होंने बड़े को अपने पास बुलाया, "आ बेटे । मेरे पास आ" धोती की पोटली खोलते हुए उसमे से एक पुड़िया निकाली जिसमे डांसरे थे और दूसरे मे लकड़ी के दो तीन खिलौने । डांसरे तो खुद ही खेत से तोड़ लाए थे और खिलोने अपने ही खाती से बनवा लिये थे । यहां क्या खेलते होगे ससुरे, इसी से ले आए । लड़का झेंपता सा पास आया और चीजें लपककर वापस भाग गया ।

लम्बी कुर्सी पर गरदन टिकाकर वे सो गये । ससुरी बस मे कितनी भीड थी । तिस पर यह गरमी । राम ही धणी है । लोग न होकर जैसे खाखला हो जिसे दवाकर ढारे मे भर दिया गया हो ।

छोटके से भी मिलना था, न जाने कहा रहता है । बड़के की चिट्ठी आई थी कि "कई-कई दिन तक घर नही आता न खाने का ठौर न सोने का ।" एम.ए. कर ले तो चिन्ता फिकर मिटे । आज के जमाने का भरोसा नही ससुर सब कुछ कैसा तो होता जा रहा है । कितना बदल गया है यह जयपुर भी । चारो तरफ ऊँची-ऊँची इमारतें खड़ी हो गयी । जिस सड़क पर चले जाओ कुहराम मचा रहता है । एक बार तो कोई घण्टे भर खड़े रहे तब जाकर सड़क पार कर पाये थे । जिस पर कोई जुलूस आ जाए या कोई दुघटना हो जाए तो घन्टों यातायात रुक जाता है । वे यादो की उस सुरग मे चले गये जब यह बाजार बना भी नही था । दिन मे सियार बोलते थे । और लोग अकेले जाने का साहस नही कर पाते थे ।

और भी कितनी बातें थी जो बड़के से करनी थी । रामदीन मास्साब की बदली के लिए भी कहना था । हो जाए तो अच्छा है पार साल बेचारे की घरवाली छोटे-छोटे चार टाबर छोड़कर जापे मे चली गई थी । और गाव मे भी सब थुर-थुर करते हैं कि बेटा एम.एल.ए. होकर भी सार-सभाल नही करता ।' गाव मे आराम भी है तो लोगो की कड़ी बानी भी है । सर-पच कह रहा था बड़का तो एम.एल.ए. होने के बाद सीधे मुँह बात भी

नही करता। बात भी सच है। कितनी तब्दीली आ गई है छोरे में। जरा ढंग से समझा देंगे कि आदमी को दिन देखकर चलना चाहिये, ऊपर मुँह करके थूकोगे तो खुद पर ही गिरेगा। अच्छे-अच्छो का गरब नही रहा।

बड़का रात को जाने कब आकर सो गया था। उन्हे तो शाम को खाना खाते ही नीद ने दबोच लिया। पाच कोस पैदल चलना और जिस पर यह बुढ़ापा। जोड़-जोड़ दर्द करने लगा था।

सवेरे उठते ही नहा धोकर पछेवड़ा ओढ़े तावडी में बैठ गये थे। बड़का जाने कब उठकर तैयार हो गया था उन्हे बाहर बैठे देखा तो ठिठक गया, "कब आए। और तो ठीक? थोडी जल्दी है" कहकर जाने लगा तो उनसे रहा नही गया। "अरे ऐसी भी क्या जल्दी, बाप से भी कोन जन्म की दुश्मनी है।" वे अन्दर से भर आए। लेकिन किसी तरह अपने को रोककर कहा "रामदीन की बदली करा देते बिचारे की, और फिर छोटका कहां है? जरा पता तो लगाते। गाव को तो दोनो ही भूल गये। बार-त्योहार ही आ जाया करो। गाव वाले सारे थुर-थुर करते हैं। और फिर तुम्हें तो चुनाव भी लडना है। वो मिसिर का छोरा कलट्टर हो गया तो भी अपने मा बाप को महीने दो महिने मे देखभाल लेना है। साले न कुछ जिस तिस की सुननी पड़ती है कि फलाने का बेटा एम.एल.ए. क्या हो गया पास भी नही फटकने देता। उनसे यह सब सुना नही जाता। ससुरे जन-जन से कौन माथा फोड़ी करे। और फिर ऊपर से ये शेखी बघारेंगे।" उनकी नसें फूल गयीं। खासी के साथ मुँह मे भर आए बलगम को थूकते हुए वे चुप हो गये।

"ठीक है शाम को बात करूँगा अभी मुझे एक जरूरी मिटिंग मे जाना है।" कहता हुआ स्कूटर स्टार्ट कर बड़का चला गया था और उनका तम्बाकू मलता हाथ थिर का थिर होकर रह गया, जैसे सब कुछ चलता हुआ रुककर उनकी हथेली मे बन्द हो गया हो, इच्छा हुई फूँक मारकर सबको एक सांस मे उड़ा दें और फिर ठठाकर हसे।

बड़के के जाते ही एक दो औरतें जुट आयी और बहू के साथ जाने क्या खिल-खिल करने लगी। उनको शर्म हो आयी, कुर्सी को एक कोने मे खींच कर बैठ गये। एम.एल.ए. बनने के बाद बड़का बहू को एक दो महीने मे ही शहर ले आया था। जब वे शहर आए तो बहू साडी पहनने लग गई थी। एक बार तो उन्होने एक ही कपड़े के बने लम्बे से जम्फर में भी देखा। वे राम राम कह उठे। ज्यादा ऊपर माथा करना भी ठीक नही। पर सोचा नई चाल के अनुसार भी चलना चाहिए। इसलिए कुछ कह नही पाए। पर उनसे यह सब अटरम-सटरम देखा भी नही जाता। कहने को पढ़े लिखे हैं पर सहुर दो कौड़ी के भी नही। ज्यादा गुमान भी अच्छा नहीं। वो तो शुकर करो टिकट मिल गया और फिर यह जनता भी मूरख है जो जितवा दिया नहीं तो सारा कुनबा ही ऐसा है। मछगलागल का ब्याव चलता है। पर ये शेखी बघारेगें। कहते हैं तुमने तो कुछ नही किया अपनी जिन्दगी मे और फिर तुमसे तो कुछ नही मांगा। अब इन लण्डूरो से कोई पूछे अरे बेसहूरो हम ऐसी लुच्चई करते तो तुम इतना कुछ कहां बन पाते और हमारी आत्मा तो है तुमने तो उसको भी मार दिया, आज इस पार्टी मे तो कल उस पार्टी मे। हम बीस कोस पैदल आकर चले जाते, सोचते रुपया-धेली बचे तो ही अच्छा।

ग्यारह बजे नौकर खाना दे गया था, वही पलंग पर रखकर खाने लगे तो उसने मना करते हुए एक स्टूल लाकर रखदी। पलग के साफ सुथरे कपड़े को देखकर वे खुद झेंप गये और स्टूल के बजाय नीचे फर्श पर ही बैठकर खाने लगे। नीचे भी सहमते हुए से बैठे, उन्हें लगा कही कुछ गलत हो गया है उनसे, लेकिन क्या ? वे तय नही कर पाए। सोचने लगे 'साला' यह भी कौन बात हुई कि खुद के छोरो के घर मे ही डर सा लगता है। किसी तरह उल्टे सीधे गास निगलकर पलग पर पाव सीधे किए तो छोटके की याद हो आई। जाने किस नशे मे कहा डोलता फिरता है। सोचेगा तो सोचता ही रहेगा। लाल आँखें रुखे सूखे बाल और बेतरतीब कपड़े पहने सारी-सारी रात डोलता रहेगा। सोते भी चैन नही—जबड़े भीचे, मुट्ठी कसे

अनाप शनाप क्या से क्या तो बड़बड़ाता रहता है। साल भर पहले उसका यह रूप देखकर वे सहम गये थे।

जाने कौनसी घड़ी मे इस बार शहर जाना हुआ कि वे एक दिन भी वहाँ चैन से नही रह पाए। 'करम गति ...' अब बुढापे मे यही बदा था उन्हें क्या पता था कि बड़का इस तरह भी निकल आएगा। खास बाप से ऐसे बात कर रहा था जैसे हाली हो। कहने को सब कुछ रामजी राजी है, पर कुछ नहीं। पहर रात गये बडका अपने दो तीन दोस्तों के साथ आया, सभी के मुँह से दारू का भभका उठ रहा था। वे राम राम कह उठे। बात करनी चाही तो अंग्रेजी मे जाने क्या गिटपिट कहा कि उसके साथ आए सारे दोस्त खिलखिला उठे। उन्हें बुरा तो लगा पर मन मसोस कर रह गये।

वह बड़बडाता रहा। 'मैंने सभी का ठेका नहीं ले रखा है। छोटका कहना तक नही मानता तब इस घर मे आने का क्या काम? पिछले सप्ताह मैंने साफ मना कर दिया, यहां रहना हो तो ढग से रहो। पढ़ने के नाम पर गुण्डागर्दी करता है, सुना है नक्सली हो गया, यही हाल रहा तो जेल मे बद करवा दूँगा। आज ही शिक्षा मन्त्री डाट रहे थे। मन्त्रिमण्डल के विस्तार मे शायद मेरा भी नाम आ जाए। लेकिन यह इतना नालायक निकला कि सब कुछ पर पानी फिर जायेगा। इसलिये आज मैंने अखबार में उससे सम्बन्ध विच्छेद का एलान करवा दिया। और भी जाने क्या बकता रहा और वे सब चुप-चुप सुनते रहे।

उनका जी खट्टा हो आया। एक पल छिन भी ठहरना नहीं सुहा रहा था। मुँह देखने का भी धरम नही रहा। ससुरे जनखे हो गये हैं। अरे कम्बख्तों कुछ अकल से भी काम लो। ऐसा स्वार्थ भी किस काम का है कि परिवार मे ही तरेर हो जाए। अब सूरत भी देखूं तो दुहाई। बुढ़ापे मे यही गत होनी थी।

रामदीन के लिए शिक्षाधिकारी से खुद मिलना चाहा, पर सोचा—बेकार

है। सब सुसरे बेईमान और टुक्कडखोर हैं। बिना जान पहचान के मिलने से भी मना कर देंगे और बड़के का नाम तक लेना वे नहीं चाहते थे। सोच में डूब गये कि रामदीन को क्या जवाब देंगे।

सुबह जल्दी ही अपनी पोटली बांधकर वे डिगर जाना चाहते थे। बड़के से जी उचाट हो गया था इसलिए उसके उठने से पहले ही चल देना उचित समझा। लेकिन छोटके मे जी अटका हुआ था। समुरी आत्मा ही तो है नहीं मानती, वह है भी भोला ही, धुन लग गई तो लग ही गई। सोचा एम.ए. कर लेगा तो कहीं अच्छा ठौर ठिकाना पकड़ लेगा। फिर ब्याह भी तो करना है। "नक्सली" उनके दिमाग मे यह शब्द फिर कौन्ध गया। मास्टरजी भी कह रहे थे। ये लड़के ही जरूर कुछ कर सकते हैं। इनकी भावना एकदम सच्ची हैं, पर पुलिस इनकी दुश्मन है, एक-एक को बुरी तरह मारती है। और भी अनेक किस्से सुनकर वे सिहर उठे थे। अभी तो "दूध के दात भी नहीं खिरे।" वे भी जरूर कुछ न कुछ भला ही सोचते होगे तभी तो मौत को बुलाते हैं। दाढ़ी के बालो की जड़ों में पसीने की बूंदे अटक गई। आन्दोलन, जुलूस, पुलिस की गोलिया माथे पर बल पड़ते गये। यह पता होता तो छोटके को पढ़ाते ही नहीं।

रास्ते मे भी कई सवाल कौंधते रहे। गांव से भी तग आ गये। लेकिन अब गांव छोड़कर भी कहां जाएं। रामप्यारी के साथ वे भी उठ जाते तो अच्छा रहता। साला गांव भी कटखना हो गया है। खाटली पर चित्त पड़ गये तो पड़ गये। कोई पानी के लिए भी पूछने वाला नहीं। अब तक तो जैसे तैसे कट गई। आगे क्या होगा? सोचकर रोगटे खड़े हो गये। अगो से सत सा निचुड़ गया। हारी बीमारी मे गाव साथ तो देता है, पर उसकी कड़ी जुबान नहीं सही जाती। जिंदगी मे कभी किसी के आसरे नहीं रहे। पर अब तो जो करम मे लिखा है वही होगा। राम राम कहकर किसी तरह कॉलेज में पहुंचे। वहां किसी से पूछा तो मालूम पड़ा होस्टल मे छोटके का कोई दोस्त रहता है उसे सारा पता होगा। वहां लडकों के कई झुण्ड खड़े

थे वे उन सबके चेहरे देखने लगे। उनकी भोली-भोली हंसी देखकर चित्त खिल उठा। वे कल्पना भी नहीं कर सके कि ये बन्दूक गोली भी चला सकते हैं। सब बड़ी-बड़ी हस्तियों की कारस्तानी है। साले कुर्सी के लिए गरीबों का गला तक रेतने से नहीं घबराते।

दूर से ही दो मंजिली इमारत दिखाई दी तो उन्होंने अनुमान लगाया यही होस्टल होगा। पैर घसीटते-घसीटते किसी तरह दरवाजे तक पहुंचे तो वहीं बाहर गुलमोहर के पेड़ से सिर टिकाकर सुस्ताने लगे। हफनी बढ़ गई थी। अपने आप आंखें मुंद गई। बस धीमी-धीमी सांस चलने की आवाज सुनाई दे रही थी। उनको अपने भीतर एक घाव सा नजर आया और लगा अब तो यह रिसने भी लगा है। खुद को एक निस्सहाय अवस्था में पा रहे थे। वे खुद से कातर हो आए।

गोड़े का सहारा लेकर किसी तरह उठे। चपरासी से छोटके के दोस्त का कमरा पूछा और उसकी तरफ धीमे-धीमे कदम बढ़ा दिए।

खट्ट खट्ट की आवाज सुनकर चौखाने की लुंगी पहने लड़के ने दरवाजा खोला। एक अपरिचित बुड्ढे को अपने सामने देखकर वह एक बारगी हतप्रभ सा रह गया। बगल में एक पोटली और धूल भरे जूतों के साथ कई दिनों की अस्त-व्यस्त दाढ़ी, पुरानी खाकी कमीज के ऊपर एक फटा सा स्वेटर और एक पांयचा ऊपर बांधे धोती के साथ दो तीन मोड़ दिये एक मफलर भी गले में पड़ा था।

वे लड़के के साथ कमरे में आ गये। उनकी आवाज सुनकर लड़के ने महसूस किया वे एकदम थके हुए हैं। परिचय के बाद पानी लाकर पिलाया। उसने अच्छी तरह देखा पानी अन्दर जाते ही जंग खाई मशीन की तरह उनके अन्दर से गुटर-गुटर की आवाज आ रही थी। और बेहद अन्दर धसी हुई आंखें एक समूची इतिहास कथा अपने आप कह रही थी। लेकिन उनमें एक अजीब तरह का उतावलापन भी नजर आ रहा था।

'बेटा" तुमसे कुछ बातें करनी हैं "उनकी आवाज सुनकर लड़का वहीं खड़ा

रह गया। उसने सोचा मैं इनको क्या कहूंगा। मनीष के नाम तो वारण्ट जारी है। पुलिस सरगर्मी से तलाश कर रही है। अपनी बात खत्म कर उन्होंने जब सिर ऊपर उठाया तो आखें गीली हो आई थी। प्रयास से आखों के गीलेपन को थामते हुए भी अंगुलियो मे कुछ बूंदे ठहर गई और गमछा आखों तक चला ही गया।

"बाबा आप इस तरह इतने····।" लड़का उनके पास सरक आया। "कुछ नही बेटे, बस एक बार अपनी आखो से देख लेता। पढना क्या हुआ एक तरह से····।" आगे के शब्द गले मे अटक गये। उनका पूरा शरीर हिल रहा था। दिल ने चाहा बस एक बार मिल लेते। न जाने क्यों लग रहा था कि अब कभी नही मिल पायेगे। मुंह से कुछ भी नही निकल रहा था। लड़के के प्रति आत्मीयता उमड़ आयी और उसकी पीठ थपथपाकर खड़े हो गये। "अच्छा बेटे, आए तो कहना भले आदमी एक बार मिल तो ले कहना खूब याद कर रहे थे।" लड़के ने रोकना चाहा लेकिन धीरे-धीरे पग रखते हुए वे गैलरी मे आ गये थे।

कॉलिज मे लड़कों का एक जुलूस नारे लगाता हुआ जा रहा था। जगह-जगह लड़को के झुण्ड खड़े थे। एक के पास से गुजर रहे थे तो मनीष का नाम सुनकर वे चोक उठे। पाव थिर होकर वही के वही थम गये। उनमे से एक कह रहा था। 'मनीष और उसके दो साथी पुलिस की गोलियों से मारे गये।' क्या हुआ बेटा? एक लम्बी सास खीचकर किसी तरह उतावलेपन से घूमते हुए उन्होने पूछा।

उनमे से एक आवाज उभरी "यो ही बाबा, तुम्हारे मतलब की नही। "नही नही बेटा अभी तुम मनीष और···· कुछ कह रहे थे।" बाकी के शब्द जीभ पर थरथरा कर रह गये।

हां मनीष और उसके दो साथी पुलिस मुठभेड़ मे मारे गये। कहता हुआ झुण्ड फिर अपनी बातों में मशगूल हो गया।

उनकी इच्छा हुई अपने सिर को दोनों हाथो से घेरे में भीचते हुए अच्छी

तरह घुमाकर टटोलें कि वह है भी या नहीं। वे भीतर से फफक पड़े। बाहर भी स्वयं को रोकने की बहुत कोशिश की पर मानों जिस्म का खून पानी बनकर बहने लगा हो। वे वहीं बैठ गये। अब कुछ भी शक्ति नहीं बची थी। शरीर के भीतर तड़पती स्मृति की बिजलियों में एक बारगी सारा अतीत चटक-चटक कर टूट गया और मानों कोई भीतर ही भीतर तेज आरी से रेत रहा हो।

वे होश खो बैठे थे और शिशु की तरह रो रहे थे। आँखों से लालसुर्ख खून की बूंदें टपक रही थी और लग रहा था मानो सारा माहौल स्तब्ध होकर किसी गहरी अंधी गुफा में उतरता जा रहा है।

कुछ कहने को उनके होंठ कांपे लेकिन अस्पष्ट सी बुदबुदाहट होठों के भीतर ही दबकर रह गयी। कुछ चेतना सी लौटने के साथ छड़ी पर उनकी मुट्ठी कसती गयी। जाने कितनी देर तक उसकी मूठ पर हाथ फिरता रहा। फिर जोर लगाकर उठे तो आसपास की क्यारियों में खिलते मौसमी फूल, दीवार के पास खड़ी हेज और लॉन में खड़े पेड़ों पर पागलों की तरह छड़ी से अन्धाधुन्ध प्रहार करने लगे और तब तक करते रहे जब तक थककर हांफते हुए मुंह से झाग नहीं निकल गये।



कहीं कुछ गड़बड़ है

राम परसाद ने ठीक नाक की सीध मे अपने डग बढ़ा दिये। "कैसी उमस हो रही है आखा साड़ सूखा निकल गया और अभी तक मेह नही बरसा। भगवान भी भरे को भरता है। शहर मे कैसी तो घूमधाम मची है। रंग बिरंगे लत्तो मे लोग उछलकूद रहे हैं और गाव मे खाली पाणी की भी किल्लत।" इस तन्त्र पर सोचते ही रामपरसाद के भीतर का तन्त्र गड़बड़ा गया। उसने भरपूर निगाहो से अपने चौतरफ देखा-मोटर कारें अच्छे अच्छे कपड़े-लत्ते पहने लोग लुगाई। लुगाइयां भी ससुरी ऐसी कि हाथ लगाओ तो मैली हो जाए। हाथ की सोचते ही रामपरसाद ने अपनी हथेली फैला दी, ससुरे। ये कोई हाथ थोड़े ही हैं, फावड़े हैं फावड़े खैर, अपनी तो जैसे तैसे कट गयी। जग्गी ससुरे के ऐसी ही फूठरी लुगाई ल्याणी है। पढ लिख भी खूब गया, पूरी सोलह किताब। उससे भी ऊपर जाणे कौणसी पढाई है दो तीन बरस और हो गये पण अभी तक नौकरी का कोई जुगाड़ नही बैठा। उस दिन मास्टर हस रहा था कि कलट्टर की कुरसी मिलेगी। घर जाकर डोकरी को सारी बात बतायी तो ससुरी गले और पड़ गयी और लगी रोणे–भींकने कि टाबर को देखे कुण बरस हो गये पहले सुध बुध तो लो कहा है।" लाख समझाया कि अब टाबर थोड़े ही है पूरी सोलह किताब पढ़ ली और पच्चीस बरस पीछे गेर लिए। जरूर कही कुछ जुगाड़ बिठा रहा होगा। देखणा एक

दिन मोटर कार लेकर आयेगा तब बंगले में बैठी राज करेगी और मेरी चिलम भरेगी।

पण छोकरी किसी तरह नहीं मानी, फिर रामपरसाद का भी हिया भर आया। ससुरे, जमाने का कोई भरोसा नहीं। छोरा जाणे कहां रूल रहा होगा कि सुख में होगा, रामजी जाणे।

भीड का एक रेला धक्कमपेल करता आया तो रामपरसाद एकदम अचकचा गया। बगल के बड़े से दरूज्जे से लोग ऊपर-तली होकर बाहर निकल रहे थे। दरूज्जों के ऊपर ही मोटे मोटे हरफों में कुछ मंडा हुआ था और नीचे दो लोग लुगाई आड़े पड़े थे। लुगाई ने लत्ते भी पूरे नहीं पहन रखे थे। राम परसाद को लाज आ गई जैसे किसी नहाती लुगाई को देख लिया हो। उसने अपने चौतरफ, इस तरह देखा कि कहीं कोई देख तो नहीं रहा है। पर वहां भीड़ के बावजूद उसकी तरफ कोई नहीं देख रहा था। सारे हंसते कूदते धक्कमपेल करते बाहर निकल रहे थे। "जरूर कोई ख्याल-तमाशा हो रहा होगा।" उसने मन ही मन सोचा। सबको हंसता गाता देखकर उसका तन्त्र फिर गड़बड़ा गया। शहर में घुसने के बाद से ही उसे चारों तरफ तीज त्योहार सा नजर आ रहा है। कोसों से एक भी खेत नहीं देखा। खाते क्या होंगे ये लोग? वह तो बारहों मासे खेत में लगा रहता है। ढंग के कपड़े लत्ते तो दूर, अकाल पड़ जाये तो खाणे के भी पूरे नहीं पड़ते। फिर इनके पास इतने नोट और खाणे को नाज कहां से आता होगा? उसने हिसाब लगाया यह तीसरी बात होगी जो जग्गी से पूछनी है। इन सबको वह एक-एक मन के किसी कोने में तह करके रखता जा रहा था।

सामने चौरास्ता था जहां रामपरसाद को यह तय करना था कि किधर जाना है। भीड़ भी ज्यादा थी। उसने अपने चौतरफ निगाह डाली। इस घालमेल में उसे एक भी आदमी ऐसा नजर नहीं आया जिससे कुछ पूछे। वह घबरा गया। अब रस्ता किससे पूछें? वहां सारे कोट पतलन

वाले थे। उसने अपने कपड़ों की तरफ देखा। ये [illegible] मुश्की [illegible] ही लठ्ठे की कमीज बनवायी थी गंगादास के मेले पर। डोकरी से कहा था कि एक मुट्ठी खार की डाल देणा जिससे लत्ते और उजले हो जाएं। पण उस बिचारी का भी क्या दोष बुढ़ापे की काया काम नहीं करती। बेटियां दोनों ब्याह दी। घर का सारा काम काज उसे ही करणा पड़ता है। जग्गी की आस लगाये बैठी है। अब उस भली आदमण को यह कौन समझाये कि जग्गी के तेरे जैसे लठ्ठ गवार थोड़े ही ब्याहणी है और फिर कहीं नोकरी लग गयी तो लुगाई को अपणे साथ रखेगा कि तेरी खातिरदारी में। सामने से एक रिक्शेवाला आता दिखायी दिया जो गांव का सा ही लग रहा था। रामपरसाद की कुछ हिम्मत बन्धी और वह दौड़ता सा उसके पास आ गया।

"भाईड़ा, राम राम। मैं फलाणे गांव से आया हूं। यह ठौर बता दो किस दिशा में है।" कहते हुए उसने चिठ्ठी रिक्शे वाले की तरफ बढ़ा दी। उसकी सांस उपर तली हो रही थी और हाथों की नसें भरी हुई काली स्याह पड़ती जा रही थीं जैसे उनके फूटते ही अभी मटमैले खून की पिचकारियां छूट पड़ेंगी और सांस थिर होकर ठहर जायेगी।

"पण भाई, न गली, न मकान नम्बर ऐसे में कहां ढूंढोगे? इतना बड़ा शहर है, हजारों मोहल्ले, गलियां और लाखों मकान है।" रिक्शे वाला आंखें गड़ाकर हरफों के अर्थ तक पहुंचकर भी उस मकान तक नहीं पहुंच पा रहा था जहां जग्गी रहता था। राम परसाद गफलत में पड़ गया और पहली बार उसके भीतर डर भी उग आया कि कहीं जग्गी का ठौर ठिकाणा सचमुच में नहीं मिला तो क्या होगा? माथे पर पड़े सलवटों में पसीने की बून्दे आकर अटक गयीं। किसी तरह रिरियाते हुए वह बोला "भाई परदेश का मामला है, कोई जाण न पिछाण। छोरे को गांव गये तीन बरस हो गये पढ़ाई भी पूरी करली। दो बरस से तो कोई चिट्ठी पतरी भी नहीं, भागम भाग में आया हूं कि कुछ खोज खबर तो

मिले।" कहते हुए वह हांफने लगा था। आंखे सिकुड़कर ढीली पड़ गई तो माथे की लकीरें भी सिमट कर सपाट हो गई और उनमे अटकी बून्दे ढरककर नीचे गिर पड़ी बस एक बून्द नाक की नोक पर अटकी हुई कूदने की ताक मे थी।

रिक्शे वाले ने इस बार चिट्ठी के हरफ गौर से पढ़े, वहा ऐसा कुछ नहीं था जिससे जग्गी का सही पता लग सके। हाथ के इशारे से उसने कुछ बाजार, रास्ते समझाये पर राम परसाद के भेजे मे कुछ नहीं बैठा। तब तक रिक्शे वाला सवारियों से बात करने लगा था और रामपरसाद रिक्शे वाले के बताए रास्ते की तरफ डग बढ़ाने लगा।

भीड़ में चलते हुए वह चुपचाप आकाश की ओर ताकने लगा। उसके भीतर सबकुछ अचानक अन्धेर घुप्प होकर बैठ गया। मुंह को गोल करते हुए उसने अन्दर की हवा बाहर निकाली और धोती के पल्लू से हवा करने लगा। भीड़ मे चलते हुए भी वह भीड़ मे नहीं था बल्कि भीड़ उसके भीतर डोल रही थी और वह चेहरो को उठा पटक कर धोती के पल्लू से झाड़ झाड़कर कोई एक चेहरा होले होले टटोल रहा था। उसे लगा उसके चारों तरफ सूंसार हाथ उग आये हैं और जग्गी उनके द्वारा घेर लिया गया है जिससे वह शहर से बाहर न जा सके। सड़क के किनारे खड़े इक्के दुक्के दरख्त उसे तपेदिक के मरीज की तरह लग रहे थे एकदम उदास और भावहीन।

सांझ हो चुकी थी पर अभी अन्धेरा घना नहीं हुआ था इसलिए बिजली के लट्टूओ की हल्की पीली रोशनी खम्भो तक ही सिमटी हुई थी।

भीड़ राम परसाद के लिए भीड़ न रहकर एक ऐसी गड्डमगड्ड आवाज होकर रह गई थी जिसे उसे एक आकार देना था। एक ऐसा स्पष्ट रूप जो उसे आत्मीय लग सके। जिससे वह अपने मन की बात कह सके। वह हतप्रभ रह गया। इतने सारे लोग होते हुए भी फलाणे फलाणे गाव के लोग कहां चले गये और ये सब बिना एक दूसरे को जाने समझे कहां चले

जा रहे हैं। एक हड़बड़ी में, एक ऐसी जल्दीबाजी मे जैसे समूचे शहर में आग लग गई हो। सभी जिसको जो साधन मिल गया उसी में भाग रहे थे। यह बात भी जग्गी से जरूर पूछणी है। राम परसाद ने मन ही मन सोचा।

जग्गी का ध्यान आते ही राम परसाद के भीतर एक हूक सी उठी। उसे लगा इन हजार-हजार लोगों के बीच वह एकदम अकेला पड़ता जा रहा है। यहीं क्यों सभी लोग उसे अपने ठीयो से उजड़े नजर आ रहे थे। किसी के पास पलभर की भी फुरसत नहीं थी। फुरसत तो अब उसके पास भी नहीं थी क्योंकि रात होने से पहले यदि जग्गी का ठोर ठिकाणा नहीं मिला तो रात का वासा कहां लेगा। उसे अपनी देह पसीजती सी लगी।

"बाबू साब, यह कौणसा मोहल्ला है?" डरते डरते किसी तरह राम परसाद ने एक व्यक्ति से पूछा तो बजाय उत्तर देने के उसने राम परसाद के चेहरे की तरफ देखा और चुपचाप आगे बढ़ गया।

यह उसको और अधिक आहत कर देने वाली घटना थी। उसके भीतर का डर ललाट पर सलवटों के रूप मे गुंजलक मारकर बैठ गया।

हवा बन्द, उमस भरी शाम। आसपास कितना कुछ घट रहा था। लोग दौड़ रहे थे, चीख रहे थे, चिल्ला रहे थे। पर इतनी अर्थहीन और बेजान आवाज। उस घटित को वह सुन नहीं पा रहा था, देख नहीं पा रहा था और छू नहीं पा रहा था। लेकिन इसके बावजूद बहुत कुछ घट रहा था जिसमें राम परसाद कहीं शामिल नहीं था। शब्द उसके मुंह से झर नहीं रहे थे बल्कि सफेद झग ठण्डी दशहत बनकर भीतर जमते जा रहे थे। फिर अचानक उसके भीतर कुछ डोला और अन्दर जमे हुए शब्द भरभरा कर ढहती कच्ची दीवार की तरह मुंह से फूटकर बह निकले और उसने अपने दोनों हाथों से सामने आते एक व्यक्ति को झकझोर कर हिला दिया। "साले, मादर के, अरे, कुछ तो, बोलो, तुम लोगों को हुआ क्या है? क्यों सबको गोहरा सूंघ गया है। कहते हैं गोहरे का काटा तो पानी भी नहीं

मांगता, जग्गी का ओर ठिकाणा कुछ तो बता दो उसी से पूछ लूंगा सारी बात। पण उसे बिचारे को भी क्या क्या पूछूंगा। यही ठीक होता तो उसे यहां पढ़णे भेजता ही क्यों। कही उस टाबर को भी कुछ हो नहीं गया हो। "रामपरसाद के मुंह से शब्द लगातार झर रहे थे। जब उसने अपने चौतरफ आंख फेरी तो वह धड़कते पुल की तरह कांपकर रह गया। उसके चारो तरफ एक भीड़ जमा हो गई थी।

जिस व्यक्ति को राम परसाद ने पकड़ रखा था उसमे भीड़ को देखते ही कुछ साहस वापरा। एक झटका देकर उसने अपने को राम परसाद की गिरफ्त से छुडा लिया और उसको गालियां देता हुआ भीड़ के समर्थन के लिए उसकी तरफ देखने लगा।

अब राम परसाद भीड़ मे घिरा सबकी निगाहो का केन्द्र था। एकदम निहत्था। हालांकि वे सब भी निहत्थे थे पर संख्या मे वे अधिक थे और वह उनके द्वारा दबोच लिया गया। पर यहां भी उसका तन्त्र फिर गडबड़ा गया। पिटते हुए भी वह उन लोगो के हाथो से परे उनके द्वारा बोले गये शब्दो पर झूलकर उनके अर्थ तक पहुंचना चाह रहा था। उस अर्थ तक जहा वह उनके साथ उनकी खोह मे जाकर कुछ टटोल सके। लेकिन सड़क के किनारे हांफते हुए जब वह उठकर खड़ा हुआ तो भीड़ के द्वारा बोले गये शब्द उसकी पकड़ से बहुत दूर जा चुके थे। यदि याद रह जाते तो जग्गी से उनका अर्थ भी जरूर पूछता। जग्गी तो वरसो से इनके बीच रह रहा है उसे जरूर ये शब्द और इनके अर्थ याद हो गये होगे। लेकिन दूसरे ही पल जब उसने जग्गी को भी इन्ही लोगो के बीच देखा तो वह कांप उठा। नही जग्गी तो आखिर उसका बेटा है। मन ही मन खुद को तसल्ली दी।

राम परसाद के समूचे शरीर मे पीड़ा समायी हुई थी। वह एकदम हताश हो उठा और निराश भी। जग्गी के मिलने की अब कोई सम्भावना नही बची थी लेकिन उसे ढूंढना भी जरूरी था। उसे एक ऐसी बुरी आशंका ने घेर लिया कि वह घबड़ा गया। पाला-पोसा छोरा जाणे कहा गुम हो गया।

उसे अपने गांव और इस शहर के बीच एक [illegible] हाशिया [illegible] था जहां से वह शहर को सिर्फ देख सकता [illegible] सकता था, उसे छू नही सकता था। बीच मे एक ऐसी खाई थी जहां शब्द अपना अर्थ खो देते हैं।

"टाबर ओ टाबर, देख तो बेटा। इधर कोई जग्गी रहता है क्या? अरे, नही माफ करणा बेटा जग्गी नही, जगदीश नाम का एक छोरा, जो फलाणे गांव का है।" रामप्रसाद एक मकान के सामने खडा था और पन्द्रह बीस बरस के एक छोरे को पुचकारते हुए पूछ रहा था। लड़का पहले तो हकबकाया फिर पास आकर बोला "बाबा मकान नम्बर, गली मोहल्ला कुछ तो बताओ।" "अरे, बेटा किसकी गली, किसका मकान अब क्या बताऊ तुम्हारी उमर रही होगी जब वह शहर आया तब। दो तीन बरस से तो मुंह भी नही देखा जाणे कहां गुम हो गया।"

लड़का वहां से खिसक गया। राम परसाद का हिया गीला हो आया। उसकी दो चार बूंदे बिना निचोड़े ही आंखो के कोयो पर आकर ठहर गई। बस जरा सा उकसाने की देर थी। शहर का जुगराफिया उसके भेजे मे बैठ नहीं पा रहा था। गांव मे ससुरा लाख झगड़ा टटा हो पण यह तो है कि किसी के दुख दरद मे आखा गांव इकट्ठा हो जाता है। यहा तो पोपटी के हंसते और हैं इनकी मा""। डोकरी की ही मतमारी गई थी मैंने तो लाख मना किया था कि दस पाच भेड़ बकरी ले देंगे। पण उसे ही लाट बणाने की हूक उठी और नही छोरा आंख तले तो रहता।

रामपरसाद ने आंख उठाकर ऊपर देखा, चांद-तारे भी जाणे कहा छुप गये थे। उसने अपने आपको लम्बी चौड़ी, ऊंची दीवारों से घिरा हुआ पाया। आकाश लटककर हवेलियो पर अटक गया था। बीच-बीच में वह टुकड़ो मे दिखाई दे रहा था। तारे बिजली के खम्भो पर औंधे मुंह लटके हुए थे। अन्धेरा घिर आया था। रामपरसाद एकदम थका हुआ था और [illegible]। लोग चल रहे थे, दौड़ रहे थे, हांफ रहे थे, खा रहे थे, पी [illegible] रहे थे।

मुख्य सड़क पर आकर वह लटके हुए कदमों से किसी तरह अपने को घसीट रहा था। भीड़ अब भी उतनी ही थी। चलते-चलते अचानक राम परसाद के भीतर एक विचार कौन्धा कि यहां का सरपंच कौण है ? उससे सारी बात पूछेंगे। यहा भी कोई न कोई सरपच तो जरूर होगा। हर पांच बरस मे गांव मे जो वोट लेणे आते हैं वे ही बड़े सरपच भी होगे। यह ठीक होता तो गांव वाले सरपंच से ही उनका ठोर ठिकाणा पूछ लेता। इस सोच के उकसते ही उसके भीतर कुछ जगा पर दूसरे ही पल जम भी गया क्योंकि अब एक दूसरी विपदा खड़ी हो गई थी कि यहा के बड़े सरपंच का ठोर ठिकाणा किससे पूछें ? यहां तो सबकी जीभ को लकुवा मारा हुआ है।

चलते चलते अचानक वह ठिठककर खड़ा हो गया। सामने देखा तो फिर देखता ही गया। फोटुएं ही फोटुएं। लोग-लुगाई, छोरे-छापरी जाणे किस किसकी ऐसी वैसी फोटुएँ टंगी थी। एक फोटु जग्गी जैसी दिखी तो वह बिदक उठा और जल्दी से उछलकर अन्दर की तरफ भागा। सामने काच के आर-पार दिखने वाला शीशे का दरवाजा था। उसने सोचा दरवाजे पर किवाड नही है। झनाक के साथ शीशे के कई टुकड़े हो गये। कोहनी से लहू निकल आया पर उसे कुछ होश नही था। वह चिल्ला रहा था— "बाबू साब। वो जग्गी की फोटू है न ? जग्गी कहा है उसका ठोर-ठिकाणा बता दो। मैं आपकी काली गाय हूं बाबू साब। "इस बार फिर उसने अपने को भीड़ और फुसफुसाहट से घिरा हुआ पाया तो घबरा उठा।

दुकानदार उसकी तरफ खारी निगाहो से देख रहा था और गाली देता हुआ चिल्ला रहा था "साले या तो पूरे पैसे दे या अभी थाणे मे बन्द कराता ।" और भी जाने क्या गिटपिट कर रहा था।

बाबू साब, पैसे तो ले लो पण छोरा ? कोहनी पर लिपटा हुआ धोती का ल्लू लहू से तर हो गया था।

किसका छोरा, कौन छोरा ? पहले इस टूटे हुए शीशे के पैसे चुका नहीं ।…….।"

"बाबू साब, बात ऐसी है कि.......... ।"

"ज्यादा बक बक मत कर । एक तरफ चुपचाप खड़ा हो जा । इसकी तलाशी लो कितने रुपये है ।" नौकर को कहता हुआ दुकान मालिक खुद राम परसाद की जेब टटोलने लगा । जेब में दस रुपये, एक चिलम, तम्बाकू और रोटी के कुछ सूखे टुकड़े थे ।

"यह तो बहुत कम है । अपने कपड़े उतार दे और एक तरफ बैठ जा ।"

दुकान मालिक की बात का कोई भी जवाब दिये बिना राम परसाद इस बार अचानक उग्र हो उठा और लगा अण्ट-सण्ट गालियां बकने लगा "साले, कमीने । अरे, सारे चोर बसते हैं यहां तो चोर । पहले छोरे का ठौर-ठिकाणा तो बता दो कहां छुपा रखा है ?" वह बुरी तरह हांफ रहा था । मुंह से झाग के कतरे उछल रहे थे । कोहनी और सारे शरीर का दर्द एकमेक होकर गालियों के रूप में फूट रहा था । बोलना रुकते ही कोहनी का दर्द बढ़ गया । दुकानदार हक्का-बक्का होकर उसके मुंह की तरफ देखने लगा । राम परसाद की कदकाठी और रोष भरा चेहरा देखकर वह चुप लगा गया ।

"ले भेए के, ले पैसे....." थोड़ी देर बाद अचानक वह फिर उग्र हो उठा । उसने धोती की लाग खोलकर ऊपर करदी और बाहर भाग आया । बाहर आते ही उसके पंख लग गये । उसे कहीं कुछ नहीं दिखाई दे रहा था । चलते फिरते लोग बुलबुलाते कीड़ों की तरह रेंगते हुए लगे । हवा पक्षियों के पंखों में अटकी हुई ऊपर ही ऊपर डोल रही थी और सूरज कहीं छिपा हुआ भाप के गरम-गरम भफारे छोड़ रहा था जो शरीर से टकराकर जगह-जगह डाह दे रहे थे । दूर से देखने पर ट्यूब लाइटें कोढ़ के चकतों की तरह दिखाई दे रही थी । चिट्ट और एकदम सफेद ।

राम परसाद दौड़ रहा था । हांफ रहा था । उसे लगा कहीं कुछ बहुत बड़ी गड़बड़ हो गई है । न छोरा मिला और ऊपर से फजीहत और हो गयी । लोगों के बीच अपने को बचाते हुए लगातार आती आवाजों के बावजूद

उसके आसपास एक सन्नाटा गूंज रहा था और एक बेजान लौन्दे की मानिंद वह भीड़ मे किसी तरह अपने को ठेल रहा था। उसके भीतर फिर एक भभका उठा। सामने एक बड़ा सा लाल नीले हरफों का बोर्ड टंगा था और उसके नीचे दरवाजे के पास ही एक सिपाही बन्दूक लिए खड़ा था।

"दीवाण जी, बड़े सरपच जी कहां रहते हैं ? कुछ ठोर ठिकाणा बता दो, मैं आपकी गाय हूं दीवाण जी। छोरा जाणे कहां गुम गया एक बार मूंडा दिखा दो।" सहमे हुए शब्द होठो पर ही थरथरा रहे थे। उसके भीतर एक सुरंग थी जिसमें वह बार-बार डूब उतरा रहा था, रेंग रहा था पर शब्दो को लाख चाहने के बावजूद वह रोक नही पा रहा था। वे उसके मुंह से छूट रहे थे पर होठों तक आते आते सिर्फ एक थरथराहट बची रह जाती थी।

"छोरा करता क्या था" सिपाही ने पूछा।

"पढ़ाई पूरी की थी और किसी काम धन्धे की तलाश मे था।"

"अरे क्या एस.पी. बनाना चाहता था। ये मुंह और मसूर की दाल।

दो चार भेड़ बकरी ले देता आंख तले तो रहता, अब तो शहर की हवा लग गयी होगी।" कहते हुए सिपाही हसने लगा और हाथ का इशारा करते हुए इन्चार्ज साहब से बात करने को कहा।

राम परसाद ने व्यग्रता से उस ओर देखा और अपने कदम बढ़ा दिये। पर अब कदमों के साथ उसका समूचा शरीर ढीला पड़कर सत छोड़ रहा था। सारे शरीर में पीड़ा समाई हुई थी और अगो के जोड़ खुल पड़ने को आतुर थे।

वह एक झबरीली मूंछों वाला गबरू जवान था। कसा हुआ तेलिया शरीर, मोटी, गोल घूमती आंखें। सिगरेट के लम्बे कस लेकर धुएं के गोल छल्ले बनाते हुए उसने सिगरेट की राख झाड़ी तो चुटकी की आवाज सुनकर मालूम पड़ा कि चारो तरफ सन्नाटा छाया हुआ है। बे आवाज दीवारों के

साथ दरख्तो की पत्तिया एकदम चुप लटकी हुई थी। पत्तियों में दुबककर बैठे हुए दो चार पाखी फड-फड़ की आवाज कर रहे थे। यह सब देखकर रामपरसाद का जी लटककर आँखो तक पिघल आया पर आगे उसने खुद रोक लिया। "आखिर मरद की जात हो ऐसे चुतियापा थोड़े ही करते हैं।" खुद को तसल्ली दी।

"साब, अन्नदाता, बात ऐसी है कि छोरा गुम गया। पाला पोसा गाबरू छोरा। अब तो आप ही साब·····।" होठो की थरथराहट के साथ ही उसके पांव कापने लगे थे और पूरी बात कहने से पहले ही, वह लड़खड़ाकर वही पड़ सा गया।

"अरे, अरे। यह क्या करते हो ? ढंग से बैठो और पूरी बात बताओ यह कोई बाप का नोहरा थोड़े ही है।" थाणेदार मूंछो ही मूंछों मे गुर्राया तो रामपरसाद सीधा होकर बैठ गया।

"साब, पाला पोसा छोरा जाणे कहाँ चला गया। यहाँ पढ़णे आया था और अब जाणे कहाँ रोता फिर रहा है।" उसे लगा कि निचुड़े हुए कपड़े की तरह उसके अन्दर अब कुछ भी सत नही बचा है। उसने अपने आपको एकदम असहाय और निरूपाय महसूस किया, उसे लगा कि अब शरीर भी उसकी पकड़ से छूटता जा रहा है।

"अरे, पहले नाम, पता ठिकाणा कुछ तो बताओ। और फिर हमने कोई ठेका थोड़े ही ले रखा है। "थानेदार ने निसंगभाव से लम्बी सांस लेते हुए कहा।

"यही कोई पच्चीसेक बरस का होगा। नाम तो जग्गी है, नहीं नही जगदीश नाम है। जग्गी तो घर का नाम है और सोलहवी पास करे भी दो तीन बरस हो गये पण अभी तक कोई जुगाड़ बैठा है कि नही कुछ मालूम नहीं, मुँह देखे ही तीन बरस हो गये।" रामपरसाद हांफने लगा था, होठो पर झाग के कुछ सफेद कतरे आकर ठहर गये थे। जगदीश नाम कहने से पहले ही थानेदार [illegible] होकर बैठ गया।

"सावला सा, दुबली पतली काया और तुम्हारी सी कद काठी। ऐसा तो नही है तुम्हारा छोरा ?" थानेदार ने पसवाड़ा बदलते हुए कहा।

"हां हां साब, वही। आंखें और ललाट मां को गये हैं, बाकी डील-डोल तो मेरी ही तरह है।" राम परसाद के पपोटे फैलकर चौड़े हो गये जैसे जग्गी उसकी आंखों में ही कहीं डोल रहा है पर वह उसे छू नहीं पा रहा है, टटोल नहीं पा रहा है। "साब" जग्गी से एक बार मिला दो। मैं अभी उसे गांव ले जाऊगा। कुएँ बावड़ी में गयी नौकरी। ऐसी नौकरी से तो अच्छा है उसी दो चार बीघा मे हल जोत लेगा। मेहनत करेगा तो पेट भराई तो हो ही जायेगी किसी तरह।" राम परसाद ने अपने होठो को गोल किया और जीभ को अन्दर चुभलाकर चुप हो गया।

तुम समझते हो तुम्हारा छोरा यहां नौकरी के लिए भटक रहा है। वह तो साला गुण्डई करता फिरता है। दूसरे छोरों के साथ उधम मचाता है, धरना देता है, नारे लगाता है और जाने क्या-क्या करता है।" कहते हुए थानेदार के नथुने फूल गये। वह एक तरफ से इस तरह ऊंचा हुआ जैसे अन्दर की हवा को एक बारगी मे बाहर निकाल देना चाहता हो लेकिन थोडी देर बाद उसके भीतर की हवा बाहर आने के लिए फिर उकसने लगी थी।

"ठीक है मेरे साथ आओ, मिलवाता हूं।" इस बार गुब्बारे की तरह हवा निकली और वह उठकर खड़ा हो गया। "उसे समझाना आगे से ऐसी हरकतें नही करें नहीं तो कही मुठभेड मे मरमरा जायेगा।" अब शायद वह हवा से मुक्त हो चुका था इसीलिए उसकी चाल मे तेजी के साथ थोड़ी अकड़ भी आ गई थी। "यदि छुड़वाना ही है तो दीवान से बात कर लेना वह सारी बात समझा देगा। नही तो जेल मे सड़ता रहेगा।" उसकी आखों के भयावह लाल डोरे और अधिक गहरे हो गये और उनमें कुछ ऐसा भाव तैर आया जिसे रामपरसाद कोशिश करने पर भी नही समझ सका। क्योंकि उसने ऐसी चमक और ऐसा भाव पहली बार देखा था और वह तय

नहीं कर पा रहा था कि मानुख जात की आंखों में भी ऐसी चमक और ऐसा भाव हो सकता है जो किसी आदमखोर जिनावर में ही उसने आज तक देखा था।

राम परसाद थानेदार के पीछे चल रहा था। थानेदार अब बायीं तरफ मुड़ा तो एक बारगी रामपरसाद की आंखों से ओझल सा हो गया लेकिन थोड़ा तेज दौड़कर वह उसके नजदीक आ गया। पिछवाड़े की तरफ लोहे की मोटी ताड़ियों के पीछे से अन्धेरे मे चमकती दस पांच मानुख आंखें और उनकी गंध आयी पर दूसरे ही पल बदबू का एक भभका नथुनो में घुसकर समूचे शरीर मे समा गया। राम परसाद को लगा यदि ज्यादा देर तक वह यहीं खड़ा रहा तो उसका शरीर बुलबुलो में फूटकर पिचपिच हो जायेगा। अब वह ठीक ऐन ताड़ियों के सामने खड़ा था बिना हिले डुले, बे आवाज। थानेदार वहां से जा चुका था। उसके चौतरफ एक दमघोंटू धुंधलका था। उसी धुंधलके मे खड़ी दो-तीन आकृतियों में जग्गी था, उसकी पकड़ में होते हुए भी पकड़ से बहुत दूर। शब्द जीभ पर आकर थरथरा रहे थे एक आकार ग्रहण करने के लिए। एक ऐसी धार गढ़ने के लिये जो सब कुछ चीर जाए, आर-पार। जीभ बार-बार अन्दर बाहर आ जा रही थी पर रामपरसाद के पास बात करने को अब कुछ भी नहीं रहा था। जग्गी को वह किन शब्दों और किस आवाज मे पुकारे। निरर्थक, बे आवाज धुंधलके ने शब्दों को भी अपनी लपेट मे लेकर आवाज और अर्थहीन कर दिया था। "अरे, जग्गी। बेटा देख तो मैं आया हूं.....मैं.....तेरा बाबा।" राम परसाद ने आतंकित दृष्टि से जंगले की ओर देखा। उसे अब भी विश्वास नहीं हो रहा था कि जग्गी यहां हो सकता है जहां सास लेने के साथ ही समूचे शरीर मे कीड़े रेंगने लगते हैं।

"बाबा। मैं यह हूं जग्गी। कैसे हो, और मां कैसी है? "रामपरसाद को लगा कोई आवाज है जो उसके कानो मे तैर रही है, कोई शब्द हैं जो उससे टकरा रहे हैं लेकिन वह उनको पकड़ नहीं पा रहा है। उसने अपनी आंखें चौड़ी कर फैला दी। रोशनी का एक चौंधा कहीं से आकर जग्गी के मुंह

पर टिक गया था। बढ़ी हुई बेतरतीब दाढ़ी और भूत से कपड़े, तपेदिक के मरीज सी काया। उसकी सांस की खड़-खड़ आवाज साफ सुनाई दे रही थी। उसे लगा कहीं कुछ बहुत बड़ी गड़बड़ हो गई है। वह एकदम चुप था। न वह कुछ देख पा रहा था और न कुछ सुन पा रहा था। अब वह यह किससे पूछे कि इस छोरे को क्या हो गया? यह शहर इसको भी ले डूबा। दोनों को चुप देखकर जग्गी के पास दो तीन छोरे और आकर खड़े हो गये। कुम्लाए चेहरे और बुझी जोत वाली आँखें थी, उन सबकी।

थोड़ा आगे बढ़कर रामपरसाद ने जग्गी का हाथ उठाकर जोर से भींच लिया और अपने थरथराते हाथ उसके माथे पर फेरने लगा। जग्गी के बाद एक एक कर पास खड़े सभी छोरों की पीठ पर उसने हाथ फेरा और ठोढ़ी टटोली। भीतर से वह तरल हो आया था, कहने को अब उसके पास कुछ भी नहीं बचा था। शरीर के साथ उसका सब कुछ निचुड़ चुका था। राम परसाद को लगा बोल उसके होठों के बजाय आंखो पर आकर ठहर गये हैं। वह बहुत कुछ कहना चाहता था। हजार तरह की बातें, हजार तरह के सवाल थे उसके पास, लेकिन इस समय कोई भी उसका साथ नहीं दे रहा था। और वह यह भी नहीं चाहता था कि उसकी आंखो में अटके हुए सवालों से जग्गी का साक्षात हो इसलिए वह जल्दी ही वहां से हट गया।

"बेटे, यहां से छूटे तो गाव आना। तुम्हारी माँ याद करती है।" शब्द उसकी पकड़ से दूर होते जा रहे थे। अब क्या बोले? वहां से घूमा तो लगा शरीर के कई टूक करने पर भी उसे दर्द नहीं होगा। वह सुन्न होकर रह गया। दुख, दर्द के अहसास से एकदम परे।

थानेदार अब भी वहीं बैठा था। रामपरसाद ने उसकी तरफ देखा भी और नहीं भी देखा। जेब मे हाथ डाला पर खाली ही वापस लौट आया। सब कुछ रीतता क्यों जा रहा है, खाली क्यों होता जा रहा है, उसने सोचा। आकाश की तरफ देखा पर वहा भी एक गहरे अन्धे धब्बे के अतिरिक्त कुछ नजर नहीं आ रहा था।

शरीर एकदम तन गया था। लठ्ठ की तरह। उसे लगा चारों तरफ हवा में ऐसा कुछ घुला हुआ है जो काया से टकराकर दोस-छोड़ रहा है। एक कदम भी आगे बढ़ाना उसे पीड़ा दे रहा था। एक अज्ञात आशंका से उसका शरीर कांप रहा था। तो? उसने मन ही मन कुछ फैसला किया लेकिन क्या? वह स्वयं नहीं समझ पाया। रामपरसाद ने एक बार फिर घूमकर देखा थानेदार अभी भी वहीं बैठा था। बे आवाज बेहरकत हर चीज अपनी जगह वैसी ही थी, एकदम चुप।



नीले लिफाफे में बन्द डर

कमरे से बाहर निकलने के लिए मैं बहुत देर से अपने भीतर साहस जुटा रहा था और अब मुझे लगने लगा था कि मैं निर्बाध बाहर जा सकता हूं। सुबह के आठ या नौ बजे होंगे। किवाड़ की फांक से झांककर देखा तो मकान मालिकन मेरी तरफ आती हुई दिखाई दी और मुझ मे अब तक जुटा हुआ साहस एकदम लड़खड़ा गया।

पिछले कुछ दिनों से ऐसा अक्सर होता रहा है कि मैं न जाने क्यों हर व्यक्ति, हर चीज, हर आहट, हर खड़खड़ाहट से डरने लगा हूं। यहां तक कि कभी-कभी तो अपनी सास की आवाज से भी पसीने में तरबतर होकर कांपने लगता हूं। ऐसे हर समय मे अपनी पुरानी आदत के मुताबिक मैंने सिगरेट सुलगाई और उसके धुए मे प्रकृतिस्थ होने की कोशिश करने लगा। लम्बी सास लेकर सुबह की ताजी हवा को अपने फेफड़ो मे भर लेना चाहा पर अन्दर की घुटन के कारण उसका मुझ पर कोई असर नही हुआ। बल्कि एक अजीब सी बेचैनी घेरने लगी।

अक्सर मकान मे सबके उठने से पहले तैयार होकर वापस अपने कमरे मे पड जाता हूं और अन्य किरायेदारो के अपने अपने काम धन्धो पर चले जाने के पश्चात ही कमरे से बाहर निकलता हू। इस बीच का समय मेरे लिए सबसे अधिक यन्त्रणादायी होता है। खिड़की के सामने से गुजरता

कोई भी व्यक्ति जब इधर देखता है तो मैं अपने मे सिमटकर रह जाता हूं और तुरन्त खिड़की को बन्द कर देता हूं। मुझे लगता है वे सब मेरा उपहास करने पर तुले हुए हैं। मेरे कपड़े, मेरे चेहरे, मेरे घुन्चुपन और तेरी तंगहाली सब पर वे हँसते हैं और तब मेरे पास अपने मे ही सिकुड़कर रह जाने के अतिरिक्त कोई उपाय नही बचता।

वह एक शाम थी। वातावरण मे न उमस थी न सरदी। उदास सहमी हुई सी शाम। सरकारी या अपने अपने वाहनों मे लोग दौड रहे थे, हांफ रहे थे। एक ऐसी जल्दी मे, जहां उन्हें एक पल की भी फुरसत नहीं थी। मैं सड़क के एक तरफ न दौड़ रहा था न चल रहा था सिर्फ रेंग रहा था क्योंकि मेरे पास इसके अतिरिक्त कोई उपाय भी नही था। रेंगने की सोचते ही मैंने अपने कमरे को गौर से देखा। ठण्डा अन्धेरा, बन्द कमरा, जहां मैं एक बारगी सब रोशनियों और लोगों की घूरती निगाहो से परे सूनी खोह में आकर पड जाता। जहां चारो तरफ थी रेंगने वाली छिपकलियां, जिनसे न घृणा होती है न प्रेम, सिर्फ एक गिजगिजाहट उपजती है। लेकिन अब मुझमें गिजगिजाहट भी नहीं उपजती। मैं उनकी गोल चमकती आंखे और रह रह कर उनका रेंगना एकटक देखता रहता हूं इसी घूरते रहने के कारण मुझे कई बार लगता कि मेरे भी सारे अग सिकुड़कर छिपकली के आकार मे परिवर्तित हो गये हैं और सारे शरीर मे रोयो के स्थान पर हल्के हल्के काटे उभर आए हैं। तब ऐसे में मुझे अपने आप से घृणा होने लगती है और ऐसे क्षणो मे बेचैनी से अपने जिस्म के एक एक अग को भीचकर टटोलने लगता हूं। क्योंकि मुझे लगता सबकी नजरें सिर्फ मेरी तरफ उठी हुई हैं और वे सब घोर वितृष्णा से मेरे एक एक अंग का मुआयना कर रहे हैं। जैसे मैं एक आदमी न रहकर साक्षात छिपकली मे बदल गया होऊं। और तब मेरा शक गहरे विश्वास मे बदल जाता।

इसी डर के कारण मैं बार-बार गाव जाना टालता रहा। वहाँ की गन्ध, वहाँ का स्पर्श, वहाँ की एक-एक स्मृति मेरे भीतर की अनगिनत खूंटियों

पर टगी हुई रंग से बदरंग होती गई। उनके ऊपर धूल की मोटी परत दर परत जमती गई जिसे छूने का कभी साहस तक नहीं कर सका। गाव से जब भी कोई खत प्राता तो मेरा पूरा जिस्म चटककर टूटने लगता और एक दो दिन तक मैं खत को खोलने तक का साहस नहीं जुटा पाता उसकी एक-एक सतर बिना खोले, बिना पढ़े मेरे भीतर इस तरह अट जाती कि वहां हाशिए और विराम चिन्ह को भी जगह नहीं बचती।

उस शाम भी ऐसा ही हुआ, कमरे का ताला खोलते ही देखा वहां एक नीला बन्द लिफाफा औंधे मुंह पडा हुआ था। अगले ही क्षण उसका आकार बढ़ते हुए कमरे जितना हो गया और मैं लिफाफे को बिना खोले उसके भीतर घुसकर एक-एक शब्द, एक-एक अक्षर को उसके पूरे कद के साथ पढ़ता गया।

कोई तीन वर्ष पश्चात् वह खत आया था। लेकिन उस खत के पढ़ते ही मेरा जिस्म चटककर टूटने के स्थान पर एक ठण्डे मृतपिण्ड मे परिवर्तित हो गया था। उस क्षण मैं एकदम सुन्न होकर रह गया। सुख-दुःख, गरमी-सरदी के अहसास से परे, एकदम सवेदनहीन। उन दिनों मुझे बराबर यह लगता रहा था कि किसी के साथ संवाद की स्थिति होने पर मैं कहना तो बहुत चाहता हूं पर शब्द खरखराकर गले मे ही कही अटक जाते हैं।

और तब भी मेरे मुंह से बराबर झाग निकल रहे थे। ये किसी बीयर के झाग नही थे। जीभ मुंह के अन्दर बाहर, इधर-उधर डोल रही थी, हाथ लिफाफे को सावधानी से खोल रहे थे और धूज रहे थे। लिफाफे के खुलते ही झाग का एक कतरा उछलकर लिफाफे के शब्दो पर गिर पड़ा था और दृष्टि वहा पहुचकर उन शब्दो के अर्थ टटोले तब तक उनका अस्तित्व मिट चुका था। दिमाग पर थोड़ा जोर डालकर अन्य शब्दों के संदर्भ से यह समझ लिया कि वे शब्द भी अपने भीतर किसी की मौत समेटे हुए मरे थे।

मेरे पढ़ाई खत्म होने के बाद के दिन थे ये। इस बीच मैं निरन्तर रंगो की

पहचान खोता रहा। एक-एक रंग मेरी सांसों में घुलकर छाती के भीतर कहीं जमता गया था। पसीने से लथपथ जब भी अपने को शीशे में देखा तो पाया कि मैं बुरी तरह हांफ रहा हूं और तेज सांसों के साथ जमे हुए रंग नीले रंग मे बदलकर आंखों से झर रहे हैं। एक क्षण के लिए लगता रंग नहीं मैं खुद पिघलकर वह रहा हूं मगर दूसरे ही क्षण शीशा हाथों से फिसलकर नीचे गिर जाता तो वह नीले रग का पिण्ड भी कई किरचों मे टुकड़े होकर मेरे चारों तरफ बिखर जाता जहां मैं खुरदरी जमीन पर नगे पाव खड़ा होता।

सुमि का भी तो नीला लिफाफा ही आया था और उसके पश्चात् वह आज तक वापस नही आयी। उसने बहुत शीघ्र वह सब स्वीकार कर लिया था। और उसका भेजा वह नीला लिफाफा मेरे लिए डेड लाईन हो चुका था जहा खडा मैं आज तक उसकी बाट जोहता रहा हू। पर वह नीला लिफाफा अपने भीतर सभी रंगों को समो चुका था। वैसे नीला रंग सुमि को भाता भी बहुत था। हल्के नीले रंग की साड़ी, नीला वैनिटी बैग और हल्के नीले रग की गोल बड़ी सी बिन्दी। सच, इन सबमे वह सुन्दर भी बहुत लगती थी। मैं भी हर तीसरे चौथे दिन उसे उन्हीं कपड़ों को पहनने के लिए कहता था और उसी सुमि ने जब नीले लिफाफे मे अपने फिर कभी न आने की बात लिखी तो वह पत्र पढ़ते हुए मुझे लगा था मेरी धमनियों मे बहता हुआ लाल सुर्ख लहू जमकर गहरे नीले थक्कों मे बदल गया है। तब से मैं न केवल आदमियो बल्कि चीजो से भी डरने लगा था और इन सबसे बचने के लिए अपने को सिकोड़कर कमरे के आकार तक सीमित कर लिया, जहाँ सिर्फ रेंगने वाली छिपकलियां थी और थी उनकी चमकती गोल-गोल घूमती आँखें। अब वे ही मेरी एकमात्र सहचरी थी। उन्ही को देखते रहने और सोचने से मुझे लगने लगा था मैं भी छिपकली होता जा रहा हूं जिसे देखते ही लोग मुंह सिकोड़ते हैं, हंसते हैं पर छूने का साहस नही कर पाते। ऐसे मे कभी-कभी तो मैं अपने को भाग्यशाली समझता कि चलो एक बारगी सबसे पिण्ड छूटा। लेकिन कमरे से बाहर निकलते ही लोगो की गहरी

नीली आंखे मुझ पर इस कदर टिक जाती कि मानो अभी समूचे को लील जायेंगी ।

कमरे मे बंद होने के पश्चात् जरा सी आहट या दरवाजे पर दी गई दस्तक पर भी मेरा दिल तेजी से धड़कने लगता । लगता, अभी दस्तक देने वाला जब मुझे छिपकली के रूप मे देखेगा तो चौंककर गिर पड़ेगा, शोर मचाकर लोगो को इकट्ठा कर लेगा । दबे कदमो होले-होले कमरे मे टहलता तो लगता मैं सिर्फ रेंग रहा हू और शरीर के रोगटे खड़े होकर काटो में बदल गये हैं, तब मेरी हर आवाज कातर आवाज मे बदल जाती और रात की अन्धेरी सुरग मे अपने रूदन को अपनी ही चमकती काली आँखों से धार-धार बहते हुए देखता रहता और आहिस्ता-आहिस्ता पीठ को दीवार का सहारा देकर पाँवों को पूंछ की तरह फैलाकर एकदम सीधा लमलेट पसर जाता ।

होले से मैंने अपने कमरे की खिड़की खोल दी । बाहर डोलती हवा के साथ इधर-उधर बिखरे रद्दी कागज के टुकड़े और दरख्तो के झरे हुए सूखे पत्ते आपस मे टकराकर छीजते हुए मौसम को बहला रहे थे । कपड़े पहनकर बाहर जाने का उत्साह बटोर रहा था कि किसी ने होले से दरवाजा खट-खटाया, सोचा हवा होगी । दुबारा खटखटाहट हुई तो मैं चौंककर सतर्क हो गया । आँखें दरवाजे पर गड़ा दी । इस बार की खटखटाहट लम्बी थी । मेरे तलुए पसीने से लथपथ होकर चप्पलो से चिपक गये और पसीने की एक लकीर माथे से होती हुई नाक की नोक पर आकर टिक गई । धीरे से दरवाजे की तरफ घूमा । इस बार की खटखटाहट मेरी सास रोककर भीतर तक खुभ गई, पहले शीशे मे अपने को देखा फिर किवाड़ की दरार से झाककर चेहरे की शिनाख्त करने की [illegible] की [illegible] खड़ी आकृति को कोई स्पष्ट और परिचित अ[illegible]

रोज की घुटन से एक स्याह धब्बे में बदल गई थी। "कितनी देर से खड़ा हूं, क्या सो रहे थे तो यह ...।" आगे के शब्द मेरे बजाय कमरे के अन्दर चले गये थे और मैं उनके अर्थ पकड़ूं तब तक एक नीला लिफाफा मेरी हथेलियों में डोलने लगा था। डाकिया होठों में बड़बड़ाता हुआ चला गया। एक क्षण के लिए मेरे सामने अन्धेरा छा गया। मेरी फैलती आंखें सिकुड़ कर शून्य में कहीं खो गयी। मुझ में इतनी सी कूवत भी नहीं बची थी कि उस लिफाफे के बोझ को सह सकूं और उसे अंगुलियों में भींचकर अन्दर आ जाऊं। आहिस्ते से जाने कैसे वह फिसलकर नीचे गिर गया तो एकबारगी लगा कि अब एकदम हल्का हो गया हूं, मगर मेरे पांव ठिठककर वहीं जुड़ हो गये थे। आखिर लिफाफा उठाकर अन्दर आया तो देर तक उलट-पुलटकर उसे देखता रहा। लगा, इस अकेली घड़ी में भी मैं हजार-हजार आंखों और हाथों द्वारा घेर लिया गया हूं और बर्फ सी सफेद खामोशी में बदलता जा रहा हूं। लिफाफे को टेबिल पर डालकर अपना तपता माथा तकिए पर औंधा पटक दिया। आंखें मुंद गई और उस ठण्डे मटमैले अन्धेरे में खुद को धीरे-धीरे पिघलने के लिए एकदम ढीला छोड़ दिया।

सिगरेट खत्म हो चुकी थी और अधजले बचे हुए सारे ठूंठ ढूंढकर पी चुका था। पेट की आंतें सिकुड़ कर ढीली पड़ती जा रही थीं। कमरे से बाहर निकलना अब एकदम जरूरी हो गया था।

बाहर निकलते ही हवा की एक तीखी लहर भीतरी खुभती गई। लगा समूचे शरीर में एक ठण्डी पीड़ा समा गई है। मैं तय नहीं कर पा रहा था कि यह पीड़ा मात्र ठण्ड की वजह से है या शारीरिक दर्द के कारण या सिर्फ मानसिक है। यह भी निश्चित नहीं हो रहा था कि सचमुच में पीड़ा है भी या नहीं। इसलिए इस समय मैंने इसे ठण्डी पीड़ा का नाम दिया तो अपनी ही बात पर स्वयं मुग्ध हो उठा लेकिन अगले ही क्षण सचमुच की पीड़ा से मेरा चेहरा सिकुड़ कर दोहरा हो गया।

रेस्तरां में कोई खास भीड़ नहीं थी। चाय का प्याला उठाकर पहला घूंट

लिया तो नजर-बाहर-की तरफ चली गई। काउण्टर पर रेस्तरा मालिक के पास दो व्यक्ति खड़े थे और उनकी नजरें मुझ पर ही टिकी हुई थी एक बारगी मैं इस तरह हकबका गया मानो चोरी करते रंगे हाथो पकड़ लिया गया हूं। स्वयं को संयत करने के लिये अपनी नजरें वहां से हटाली और सिगरेट सुलगाकर लम्बे कश लेने लगा। लेकिन मुझे अब भी बराबर यह लग रहा था कि उनकी नजरें सिर्फ मुझ पर टिकी हुई है। चेहरा छुपाने के लिए मैने अपनी नजरें अखबार पर गड़ा दी। वैसे भी कई दिनो से अखबार नही पढ़ा था इसलिए उत्सुकता से एक-एक पन्ना पलटकर खबरें पढ़ने लगा। लेकिन जब अखबार को समेटकर रखा तब तक एक भी खबर याद नही रही थी। सिनेमा देखने की इच्छा थी पर यह भूल चुका था कि किस हॉल मे कौनसी सिनेमा लगी हुई है। और अब अखबार किसी अन्य व्यक्ति के हाथ मे था।

वे दोनो व्यक्ति वहा से जा चुके थे। रेस्तरां मालिक भी ग्राहको मे व्यस्त हो गया। छोकरे को बुलाकर पैसे चुकाये और जल्दी से बाहर आ गया।

रेस्तरां से निकलने के बाद सारे दिन इधर-उधर डोलता रहा। पिछले कई दिनों से मित्रो से नही मिला था पर इस समय उनमे से किसी के पास भी जाने की इच्छा नही हुई। ईमानदारी से कहूं तो मुझे अब किसी मित्र पर भी विश्वास नही रहा था। इन दिनों मैं एक अजीब सी कशमकश मे था। दिमाग मे कोई भी विचार स्थिर नही रह पाता। सारे शरीर मे थकान और तनाव निरन्तर बना रहता। कारण ढूढने पर लगता मुझसे मिलने वाला प्रत्येक व्यक्ति इस सबका कारण है और इस सबका समाधान कभी नही हो सकता। ऐसे मे मेरा रहा-सहा साहस भी लुटने लगता। कुछेक क्षणो के लिए यह आशा जरूर बधी थी कि यदि माला से एक बार मिल लूं तो कुछ ठीक हो सकता है लेकिन तब एक और सकट पैदा हो सकता था, क्योकि उससे पिछली बार मिलने पर मुझे न तो प्रसन्नता हुई थी, न गुस्सा आया था और न जुगुप्सा ही। तब मैं एकदम सुन्न होकर रह गया था। माला समूचे एक दिन मेरे कमरे मे मेरे साथ रही थी। उसकी खुली

पीठ और अधढंके उभार देखने के बावजूद मैं बिल्कुल उत्तेजित नहीं हुआ। उसके बाद पूरी ताकत से मैंने उसे अपने बाजुओं में कस लिया पर थोड़ी ही देर पश्चात् पसीने से तर होकर उससे अलग हुआ तो लगा उस के अतिरिक्त मैं यह काम किसी के साथ नहीं कर सकता। माली आश्चर्य से मेरी तरफ देखती हुई वहां से चली गई थी। एक बारगी चाहा कि उसे इस सबका कारण समझा दूं पर मैंने उसे चुपचाप चले जाने दिया।

सारे दिन चक्करघिन्नी होता रहा। सिगरेट पर सिगरेट फूंकता रहा और शाम को शराबखाने मे जाकर बैठ गया वहा भी एक पव्वे के बाद दूसरा, फिर तीसरा इतनी शराब पीने के बावजूद मुझे बराबर यह लगता रहा कि नशा बिल्कुल नहीं हो रहा है, तनिक भी सुध नही खो रहा हू जबकि मैं एकदम बेसुध हो जाना चाहता था। बल्कि इस सबके स्थान पर एक ऐसी गहरी शून्यता मे लोप होता जा रहा था, जहा चीजे अपने आकार मे और अधिक स्पष्ट होती जा रही थी। एक रास्ता खुलता जा रहा था। जहां मैं अधिक साहसी हो सकता था और वह रास्ता था, चीजों की तोड़-फोड़ का, मारपीट का, हिंसा का। इसमे शामिल थे वे सब लोग जो हिन्दी अधिकारी पद के लिए अंग्रेजी मे सवाल पूछ रहे थे, साहित्य प्राध्यापक के लिए जाति पूछ रहे थे, मेरी लाल कमीज और दाढी के लिए एतराज कर रहे थे और आजकल के कवि देशभक्ति के गीत एवं भजन क्यों नहीं लिखते हैं, पर चर्चा करना चाह रहे थे। वे सब इस समय ड्रामची की मानिंद मेरे इर्द-गिर्द डोल रहे थे। और मैं एक-एक चौखटे की शिनाख्त कर उनकी औकात का अहसास कराने के लिये एक-एक को कपड़ो से बाहर करता जा रहा था। उनकी बीवियो और बेटियो के नखरों पर हंस रहा था। इस सोच के गह-राते ही मुझे लगा, अब मैं खड़ा होकर सबका सामना कर सकता हूँ, उन पर हंस सकता हूँ।

वहा से बाहर आकर मैं एकदम सीधा सीना ताने सड़क पर डग रख रहा था। कमीज के ऊपर के दो बटन खुले हुए थे और अपनी कसी हुई मुट्ठियों को हवा में भाज रहा था। मुझे लगा साहस बढ़ने के साथ-साथ हृदय को

घड़कन भी बढती जा रही है। सावधानी के बावजूद पांव लड़खड़ा रहे थे। मगर सड़क पर आने-जाने वालो पर अब भी हस रहा था कि वे मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकते। सोच रहा था कमरे पर जाते ही मकान मालकिन की खबर लूंगा और साथ ही उन सभी लोगो की जो मुझ पर हँसते हैं। उन्हे बता दूंगा कि तुम सब गधे हो। दस से पांच तक दफ्तरो मे रेंकते हो और उसके बाद घरो मे अपनी अपनी पत्नियो के नेफे में कुलबुलाते हो।' तभी मेरे पेट के भीतर एक भयकर कराह उठी तो हाथ चुपचाप पेट को सहलाने लगे। मुझे ध्यान आया कि मैंने कल से खाना नही खाया है। जेब मे हाथ डाला एक दो रुपये की रेजगी इकट्ठी होकर खनखना रही थी, पर शरीर के जोड इस तरह टूट रहे थे मानों अभी खुलकर बिखर जायेंगे और ऐसे मे कमरे मे जाकर पड़ जाने के अतिरिक्त और कोई उपाय नही था।

नाली में पाव गिर जाने से पतलून के पांयचे गीले हो गये थे। उनके छूते ही समूचे शरीर मे सिहरन दौड़ गई। ठण्ड दूर करने के लिये पीठ सीधी कर हाथों को ऊपर किया तो शरीर के सारे जोड कड़क उठे।

अब मैं कमरे के सामने खड़ा था और हाथ पतलून की जेबो मे चाबी टटोल रहे थे। दोनो हाथो की अगुलियां ठण्ड से अकड़कर सवेदनहीन हो गई थी इसलिये दो तीन बार जेब मे चाबी को छूकर भी वे खाली ही बाहर आ गई और ऊपर नीचे की सभी जेबो मे घूमती रही। मैं एकदम घबरा गया। अब? इस बार जेब मे हाथ डालकर उनको उलट दिया, टन्न··· की आवाज के साथ चाबी फर्श पर थी। ताला खोलकर अन्दर आ गया।

टेबिल पर लिफाफा अब भी वैसे ही औंधे मुँह पड़ा था। लिफाफे को देखते ही भीतर जमे काटे फिर उभर आये। पल भर के लिये लगा मानो अपनी धुरी पर घूमती हुई पृथ्वी थिर होकर एक जगह अटक गई है, अब तक का जुटा हुआ साहस एकदम लडखड़ा गया और इस समय मैं पसीने मे लथपथ था। मुझे अपनी पूरी पतलून गीली लगी। दृष्टि फिर लिफाफे पर गयी तो उसका आकार बढ़ता हुआ दिखाई दिया। घबराकर मैंने अपनी दोनो आखें

मूँद ली। लेकिन हाथ लिफाफे को लपकने के लिये उसकी तरफ बढ़ रहे थे।

इस बार मै लिफाफे को अपने दोनो हाथो मे जकड़े हुये था और एक बारगी सुमि और माँ के चेहरे आखो के सामने झूल गये। हो सकता है किसी नौकरी का नियुक्ति पत्र हो, खयाल आया, मगर दूसरे ही पल बीमारी से जूझता माँ का चेहरा हावी हो गया कही माँ ··· । नही, माँ इस तरह अभी नही ·· आँखें मूँदे सिर को एक झटका दिया तो दूसरे ही पल हाथों मे लिफाफे की जगह उसकी चिन्दिया थी और उन्हें खिड़की से बाहर फेंककर नीले आसमान को देखते हुए मै अट्टहास कर रहा था।



ग्यारह बज कर साठ मिनट

सर्दियों के दिन थे। पाला जमने के दिन। ऐसी सर्दी में भी वह रात दस बजे एक मटमैले से स्वेटर में जो कभी सफेद रहा होगा, घर मे दाखिल हुआ तो वहाँ इकट्ठे सभी लोग किसी बात पर ठहाका लगा रहे थे पर उसे देखते ही उनके बीच अचानक एक चुप्पी छा गयी। बहन और मझले भैया को जो आज ही बाहर से आये थे नमस्कार करके वह कपड़े बदलने के बहाने शीघ्र ही दूसरे कमरे मे चला आया।

इस समय साढे दस बज रहे थे और वह बाथरूम मे खड़ा था। नल से पानी की बूंदें टिक-टिक की आवाज के साथ फर्श पर एकदम सीधी गिर रही थी। पानी ठण्डा था, नल के खोलते ही तीखी धार वाले चाकू से बर्फ की शिला की तरह उसका शरीर चिरता गया और ठीक अपने सामने अपना शरीर ठण्डी सफेद कतलियो मे जमता हुआ सा लगा। सफेद झक अगुलियो के पोर और एकदम सफेद आँखों के साथ लगा शरीर ही नही भीतर से भी वह सवेदन हीन होता जा रहा है।

रसोई मे रोटियां और सब्जी ढकी हुई रखी थी। वही तीन चपातियां और एक सब्जी। दो दिन से खाना नही खाया था पर इस समय ज्यादा भूख नही थी। डिब्बे से इलायची निकालकर मुंह मे डाल ली जिससे घर मे किसी को दारू की गध न आये।

भीतर का डर हावी होकर चेहरे पर उतर आया। वह नहीं चाहता था कि घर में किसी से उसका सामना हो। इसलिए चुपचाप अपने कमरे में आकर उसको होले से बन्द किया तो एक बारगी राहत की सास ली। चारपाई पर काया को ढीला छोड़कर पटक दिया रपता-रपता पिघल जाने के लिए। कितना मुश्किल होता है चीजों और लोगो से साक्षात करना। कई बार हम यह निश्चित तौर पर जानते हैं कि ऐसा होगा पर हम उनसे साक्षात को लगातार टालत रहते हैं, और उसकी कल्पना मात्र से सिहर उठते है। जबकि साक्षात होने पर जैसा हम सोचते हैं वैसा कुछ नहीं होता बल्कि उस समय लगता है कि यदि यह सब कुछ पहले हो जाता तो इतनी यन्त्रणा नहीं झेलनी पड़ती।"

"तुम कितने बरस के हो गये ?" एक दिन शिखा ने पूछा था।

"बुड्ढा हो गया हूं।"

"धत्, फिर तो मैं भी बुड्ढी हो गयी।" उसने साफ देखा था। उस मझ दोपहर मे जैसे उसके भीतर पके हुए फूलों के पौधे को किसी ने जोर से हिलाकर झकझोर दिया हो। उसकी आखो के नीचे के गड्ढों मे उन मरे हुए फूलो के चिन्ह साफ देखे जा सकते थे। वह लम्बी सास ले रही थी मानो उन मरे हुए फूलों की लाश के बोझ से दबी जा रही हो।

लेकिन इसके थोड़े दिन बाद ही शिखा के भीतर के पौधे हरे हो उठे थे। उन पर नये फूल उग आये थे। ठहरे हुए सन्नाटे को वेधकर सपनो के पखों पर वह उड़ गई थी। तब उसने अपनी हथेलियो को फैलाकर देखा था उनमे रगो के बिखरे हुए कतरे थे, रंगबिरगी छाप थी पर उन मरे हुए पौधों की लाश पर फूल कही नही थे।

वह एकदम चुप हो गया था बिना किसी फुसफुसाहट के। होठो पर एक फीकी, पतली पपड़ी जमती गई थी। उन पर उसने जीभ फेरने का साहस कभी नही किया। जमे हुए ठण्डे सन्नाटे के लिए एक बार भी पंख नही

फड़फड़ाए होंठों से अन्दर तक वह पपड़ी एक ठोस चट्टान मे बदलती गयी जो कभी नही पिघल सकती न ताप से और न आग से।

परसों सोनू की सगाई है इसलिए बहन और मुंझले भैया आये हैं। बाहर से और भी कई रिश्तेदार आयेंगे। पिछले कुछ सालों से वह इनसे या अन्य सभी लोगो से निरन्तर बचता आ रहा है। वह क्या बनेगा? कोई डॉक्टर, इंजीनियर या अफसर वगैरह? वह जानता था कि इन सबमे वह कुछ नही बन सकता। डैडी के मरने के बाद दोनो भैया व्यापारी हो गये, एक यही है दूसरे बाहर कहीं।

"जीवन क्या है, जानती हो?" उत्तर के बजाय शिखा उसके चेहरे की ओर गौर से देखती तो पाती उसकी आंखो मे रेत की एक परत जमती जा रही है। अन्धड़ वाली रेत नही, उसके बाद की लहरदार शान्त बिछी हुई रेत। जिस पर बिना किसी आवाज के कोई चीज घसती चली जाती है। शिखा उसकी आंखो मे देखती रही थी, लगातार। और वह घबरा उठा था कहीं यह भीतर से न पकड़ ले। पर शिखा यह भी जानती थी कि उसके भीतर इतनी आसानी से नही घसका जा सकता। बहुत गहरे जाने पर ही उसके अन्दर की परतें उधड़ सकती हैं। और इतना धैर्य शिखा के पास नहीं था।

"दृश्य के भीतर नहीं बाहर भी इतना कुछ है कि हम उसे अनदेखा नही कर सकते। और फिर आज का सच भी तो यही है कि बाह्य सौन्दर्य ही लोगो को अधिक आकर्षित करता है। मात्र कहने के लिए यह सब नही कह रही हूं कभी तुम खुद और गौर से सोचो। क्योंकि आज के युग मे शब्द सिर्फ एक छलावा है और जब तक तुम खुद उनका छल के रूप में इस्तेमाल नही करोगे तब तक तुम भी उन्हीं शब्दो के द्वारा निरन्तर छले जाते रहोगे। माफ करना मैं कुछ अधिक कह गयी हू।" कहकर शिखा चुप हो गई थी। दोनो हाथो को पीछे ले जाकर बिखरे जूड़े को फिर से बनाया तो उसके पेट की त्रिवलिया साफ नजर आ रही थी। उसे लगा शिखा मे अब भी कितना कुछ बचा हुआ है जो उत्तेजित कर जाता है।

तब वह पूरे पच्चीस वर्ष का था। जीवन का एक ऐसा क्रम पूरा हो चुका था जहां आगे के जीवन के लिए सब कुछ तय हो जाना चाहिये था। तब उसके पास शिक्षा थी कुछ सपने भी थे। लेकिन यह सब कुछ जल्दी ही टूट गया। यह भी सच है कि शिक्षा से पहले उसे कुछ नहीं मिला था। पैसों की तृप्ति के बीच भी वह अतृप्त रहा था। न प्यार, न विश्वास कुछ नही पाया था।

अब से ठीक एक घन्टे पश्चात् ग्यारह बजकर साठ मिनट पर वह पूरे अट्ठाईस वर्ष का हो जायेगा। अट्ठाईस वर्ष अर्थात् ओवर एज अर्थात् सरकारी नौकरी के लिये एकदम अयोग्य। और नौकरी को वह हमेशा एक पुल समझता रहा है, एक ऐसा बिना आधार का झूलने वाला पुल जिस पर से हर गुजरने वाला लड़खड़ाता है, हिलता है। उसे इतना भी मौका नही मिल पाता कि वह एक गति से एक रफ्तार से पार कर सके जबकि वह सोचता उसे जीवन पार नहीं करना है, उसे पूरी शिद्दत के साथ जीना है। उसकी एक-एक रग पकड़नी है, पछाटे मारना है।

कल मा ने कहा था "नौकरी नहीं करनी है तो हरि के साथ व्यापार मे हाथ क्यो नही बटाते और भैया अफसरी के लिये झीकते रहते है कि इतने पढ लिख गये कही अफसर क्यो नही हो जाते। भाभी को अपने और भैया के कम पढ़ने का गिला जरूर था, और इसे वह फूहड़ तरीके से पैसे से आधुनिकता ओढ़कर पूरा करती। जिससे वह हमेशा घृणा करता रहा है। भाभी बार-बार माँ के सामने उसे मूर्ख साबित करने की कोशिश करती कि उसने इतना पढ़कर भी कुछ नही किया। उनकी नजरो में पढ़ने का महत्व मात्र अफसरी और खूब पैसा कमाना था।

"मेरे पास वह सब कुछ है जो तुम पैसे से कभी नही खरीद सकते। कितने लोग हैं जो नौकरी करते है, कितने लोग हैं जो अपार पैसा कमाते हैं, तमाम उम्र कमाते रहते हैं। मेरी तुम्हारी तरह कोई योजनाएँ नही है, न महत्वकांक्षाएँ। मेरे लिये भविष्य कोई मानी नही रखता।" कहकर वह सीधा नरेन के पास चला गया था।

कल तक वह विश्वविद्यालय मे बैठा गप्पें मारता रहता, चाय पीता रहता, पढ़ता रहता। व्यवस्था पर बातें, साहित्य पर बातें। ऐसी बहस और ऐसे तर्क कि शाम तक लगता दिमाग की नसें चटख जायेंगी। शिखा के जाने के बाद एक ऐसा सिलसिला कि वह एकदम भूल गया था कि उसके अतिरिक्त भी कोई जीवन है जहाँ सिर्फ ठोस चट्टाने हैं जो टूटती नही तोडती है। लहूलुहान करती हैं। सिगरेट, दारू, अड्डेबाजी, मारपीट इस सबके बावजूद कही कोई गिला नही। लेकिन सौमित्र से मिलने के पश्चात् वह एकदम बदल गया था।

ग्यारह दस हो चुके हैं। सिर्फ पचास मिनट शेष हैं। जब वह पूरे अट्ठाईस वर्ष का हो जायेगा। जीवन से कल नही आज अभी जूझना चाहता है वह। खोपड़ी मे गहरी सनसनाहट हो रही थी। वह जानता है अब यह सनसनाहट अनवरत रहेगी। ठीक तीन साल पहले एक सनसनाहट आरम्भ हुई थी। और आज से यह दूसरी सनसनाहट जिसका कही कोई अन्त नही अर्थात् एक भूख का रास्ता जो उसने तीन साल पहले चुना था आज से एक शाश्वत् भूख मे तब्दील होगा। रात की उस मनहूस चुप्पी के बावजूद उसमें एक ऐसी चिकनाहट थी कि जिस पर से कई चेहरे फिसलकर उसके सामने चित्त हो रहे थे। उसे उन सबसे अपने अन्दर के किसी आखिरी कोने मे बचे हुए अहं को सुरक्षित रखते हुए लड़ना था। इसलिये उसने लडाई की शुरूआत अपने घर से की थी। भूख का ध्यान आते ही लगा अब भी गहरी भूख लगी हुई है। भूख उसकी हर नस मे अपने पांव फैला रही है। और आंतो से एक फुफकार सी उठकर तन मन में छाती जा रही है।

ग्यारह बीस हो चुके हैं। चालीस मिनट और है जब वह पूरे अट्ठाईस वर्ष का हो जायेगा। अट्ठाईस का अंक उसके सीने मे एक कील की तरह गड गया। वह नही जानता ईसा कितने वर्ष के सूली पर लटकाये गये थे। सिद्धार्थ ने कितनी उम्र में महाभिनिष्क्रमण किया था। लेकिन अभी इस समय उसे यही लग रहा है कि ईसा और सिद्धार्थ भी तब अट्ठाईस के हों

रहे होगे। ऐसा सोचते ही उसके भीतर से खिरं खिरं की ग्रावाज ग्राना
बंद हो गई। ग्रभी चालीस मिनट शेष हैं जब उसे पढ़ाईम का होश
सुबह उठते ही उन सब चीजो ग्रौर लोगों का नये सिरे से सामना करना
होगा। जिनसे वह निरन्तर बचता ग्रा रहा है। घर में हंगामा खड़ा होगा।
बहन, भैया, मां सभी के प्रश्नो से जूझना पड़ेगा ग्रौर लाख चाहने के बाव-
जूद उनके किसी सवाल का जवाब नहीं दे पायेगा। सच मे तो उन सवाल
के जवाब उसके पास हैं भी नहीं। क्योकि सवालो के पहले सिरे मे ही
उनके जवाब भी लिपटे होगे कि भैया फैक्टरी लगा लो खूब पैसा ग्रायेगा
दीपा ग्रच्छी लड़की है सुख पाग्रोगे।

"सुख ?" वह जानता था सुख न पैसे से ग्रा सकता है ग्रौर दीपा तो क्य
ग्रब तो शिखा भी नहीं दे सकती।

ठीक चालीस मिनट पश्चात एक सपने का ग्रन्त हो जायेगा ग्रौर जो जीव
वह लोगों के साथ जीता रहा है उसके उपर से गुजर जायेगा। तब जीव
माने होगा एक दुख, शाश्वत् दुख जिसमे पूरे जीवन गोते लगाना होगा।

"तुम्हारी ग्राखों से सिर्फ सपने झरते है जो ग्राज साकार नहीं हो सक
जबकि, ग्राज का सच कुछ ग्रौर है, उस सच को पकड़े बिना हम झूठ क
भी नहीं जान सकते, इसलिये यह ग्रावश्यक है कि हम ग्राज के सच क
जाने।" शिखा ने एक बार कहा तो उसने कहा था कि "शिखा हम सि
एक झूठ को ढालते है "ग्रौर उसे ही सच्चाई का पुतला बनाकर पेश करत
रहते है। बिजूका की तरह लेकिन यह सब बाहरी ही हो सकता है
भीतरी सच को हम कभी नहीं झुठला सकते क्योकि वह हमारे भीतर
निकट ही कही बजता रहता है ग्रौर तब हम खुद को खुद से नहीं झुठला
सकते।"

परसो शिखा भी ग्रावेगी। सोनू ने उसे भी बुलाया है। शिखा ने वह सुख
पा लिया होगा जिसमे समूचा जीवन डूब जाये, क्योकि उसने ग्राज के सच
को जान लिया था (उसकी ग्रपनी नजर मे) उसकी इच्छा है उस सुख से
तृप्त शिखा को देखने की। कैसी लगती होगी उस सुख को पाने के बाद।

उसने भी अवश्य एक छलावा ओढ़ लिया होगा बाहर से, और भीतर से विकृत होती गई होगी। वह जानता है कि शिखा के सामने आते ही उसके छलावे को वह पकड़ लेगा। खूब पैसा, कार, अफसर पति सुख की अपार तृप्ति के बावजूद चेहरे पर ऐसा कही कुछ जरूर होगा जिसे पकड़कर वह बेनकाब कर देगा। क्योंकि वह भी उन कुछ लोगो मे शामिल हो गई है जो भूख को निरन्तर बनाये रखना चाहते हैं, ताकि वे स्वय सुरक्षित रह सकें। और फिर यदि बरसो बाद हम उन पुरानी गलियो और रास्तो पर जायें तो वहा की गन्ध, वहा का अपनत्व मिट चुका होता है।

बारह बजने मे सिर्फ तीस मिनट शेष है जब वह अट्ठाईस वर्ष का हो जायेगा। पूरे अट्ठाईस वर्ष का। खुरदरी हथेलियो को गालों पर उगे कड़ियल बालो पर मसलते हुए उसने गरमाहट लाने की कोशिश की पर उसे लगा हाथ एकदम सुन्न है। उसके भीतर का सब कुछ मर चुका है। एक अनवरत थकान जिस्म के पोर पोर मे समा गई है। चारो तरफ जग खाई लोहे की अन्धी दीवारें हैं। उन्ही के मध्य से उसे रोशनी के कुछ कतरे तलाशने है क्योंकि एक ऐसी भयकर जिजिविषा भी उसके भीतर थी जहा वह निरन्तर और लगातार लड़ना चाहता था। सौमित्र की लडाई भी उन सभी तृप्त लोगो के खिलाफ थी जो भूख को बरकरार रखने की साजिश मे बराबर हिस्सेदारी निबाह रहे थे और एक दिन वह उन्ही लोगो की साजिश का शिकार भी हुआ।

सौमित्र के साथ बीता हुआ अतीत शिराओ मे उबलकर वहीं सिकुड़ता जा रहा है। सौमित्र कहता था "जानते हो इस समय अपनी लडाई सिर्फ रोटी की है। एक साबुत रोटी की जिसे सिर्फ मैं नही, सब लोग भरपेट खा सकें, मा को पथ्य दे सकूं।" दो दिन के भूखे प्यासे उसके होठो पर जीभ फिरती तो समूची दुनिया उस गोल, अदेखी, गरम फूली हुई रोटी की गन्ध मे निपटकर रह जाती। सौमित्र आखें मूदकर तल्ख हो उठे दर्द को रफ्ता-रफ्ता पिघलने के लिये छोड़ देता। तब उसे लगता सौमित्र का दर्द उसी का दर्द है। शीशा देखा तो पाया उसकी आखो मे लाल-लाल सा कुछ तैर रहा है, और वह एकदम चुप होता जा रहा है।

उसके बाद का रास्ता घर वालों के रास्ते से एकदम भिन्न था। कई बार ऐसे लगता सौमित्र की ग्राखों से झरता गाढ़ा लिसलिसा लहू पिघलता हुग्रा उस तक ग्रा गया है जिसमे वह सम्पूर्ण डूब जायेगा। कई बार इसी तरह सोते मे हडबड़ाकर उठ जाता। लेकिन जगने पर भी सौमित्र की ग्रावाज कानो में लगाकर गूंजती रहती "हमे ग्रपनी रोटी छीननी ही होगी। वो देखो उनके हाथ कितने लम्बे होकर हमारी गरदनो तक फैलते ग्रा रहे है।' ऐसे मे सांस तेज होकर ऊपर नीचे होने लगती। वह हॉफ जाता ग्रौर तेज चिल्लाने लगता।

पन्द्रह मिनट ग्रौर हैं, जब बारह बजेगें ग्रौर वह ठीक ग्रट्ठाईस वर्ष का हो जायेगा। इस बीच के समय मे उसे कुछ नही करना है। न कपड़े पहनने है, न कुछ साथ लेना है सिर्फ जूते पावो मे डालकर घर से एकदम बाहर चले जाना होगा। न मां ग्रौर भाइयो से मिलना। भाई, व्यापारी ग्रधिक भाई कम थे ग्रौर मा भी पैसे के कारण भाईयो को ही बेटा ग्रधिक मानती थी। मा बाप ने उसे पैदा करके सिर्फ एक रिश्ता तय किया था। ग्रब उस रिश्ते की गन्धभर शेष थी। बहन से जरूर मिलने की इच्छा थी पर स्वयं जाकर नहीं यदि वही किसी बहाने इधर ग्रा जाये तो ठीक है वरना बहुत पहले ही संबंधों का कत्ल हो चुका था।

शिप्रा भी सुखी होगी। उसके सपने भी जीवित हो उठे होगे। एक क्षण उसके थरथराते होठो ग्रौर उस पर खेलती हसी को देखने की इच्छा जरूर हुई पर दूसरे ही पल लगा, उसके समूचे चेहरे पर काटे उग ग्राये हैं। कैसा हो गया होगा उसका चेहरा ? कल्पना मात्र से सिहर उठा वह। सपनो के जीवित हो उठने पर भी ग्रादमी का चेहरा इतना विकृत क्यो हो जाता है। जबकि उसके तो सपने भी झरे हुए हैं।

एक बार शिप्रा ने ही कहा था "तुम सपनो से भी ऊपर चले जाते हो जहा कोई ठोस ग्राधार नही, कोई जमीन नही ग्रौर जानते हो बिना ग्राधार के, बिना जमीन के घर नही बनाये जा सकते, घरौंदे भी नही।" उसने साफ देखा था। उसके चेहरे पर लकीरे पडती जा रही हैं। काटे उगते जा रहे

हैं। महंगी कार, बडा बंगला, बडा अफसर पति। बडा सुख। लेकिन क्या यही सुख है, यही घर ?
"ककरीली जमीन या कांटो की बाड़ पर नगे पाँव एक लम्बी दौड़ लगाओ। उनको पूरी गहराई के साथ पावो मे चुभ जाने दो। बिना आँसू बहाये चुप-चाप एक-एक को बाहर निकालो। आखे बद किये तब महसूस करो सुख क्या है ?" लेकिन यह सब वह कह नही पाया सिर्फ सोचकर रह गया था। शिखा के पास इतने सारे रग-बिरगे सुखो की कल्पना थी कि दोनों हाथों की फैली हुई पोट मे भी वे नही समा सकते थे। जबकि वह निचोड़ कर हथेली मे बद कर देना चाहता था। उसे सुख की तलाश करनी थी और शिखा को उस सुख को ओढ़ना भर था जिसे उसने पहले से बुन रखा था। परसो शिखा की आखे उसे ढूंढ़ेगी। माथे पर टंगे सपनो के साथ। पर वह नही होगा। वह सपनों से ऊपर नही, न सपनों मे, बल्कि काटो की बाड़ पर नगे पाव दौड रहा होगा।
रात के सन्नाटे मे घड़ी की टिक-टिक की आवाज तेज सुनाई दे रही है मन के भीतर कही कोई आवाज नही, एकदम शान्त, निश्चल। शरीर मे जरूर पीडा समाई हुई है और पीडा से वह टूटा जा रहा है। साथ ही भूख भी अपने पजे फैला रही है। ऐसी ठण्ड मे भी खिडकी खुली हुई है। बाहर एकदम नीला सपफाक आसमान, दूर तक मैदान मे पसरी हुई धरती पर ओस से भीगती गीली चान्दनी गीलेपन के बोझ से धरती तक झुक आयी है। उसकी इच्छा हुई चान्दनी को निचोडकर सारा रस पी जाये और उसको वापस बिछा दे जिससे वह दात खोलकर हस सके।
-बारह बजने ही वाले हैं। उठकर जूते पाव मे डाले। पूरे घर के एक चक्कर लगाया। कमरे मे किताबे वैसे ही रखी थी। कपड़े खूटियो पर वैसे ही टगे थे। कोने मे बुद्ध की कास्य प्रतिमा वैसे ही पालथी मारे एकदम शान्त थी। घड़ी की टिक-टिक मे भी कही कोई व्यवधान नही था लेकिन इन क्षणो के बीच उसने एक बार भी उसकी ओर नही देखा। क्योंकि उसके लिए समय का कोई महत्व नही था।
अब ठीक ग्यारह बजकर साठ मिनट हो चुके थे और वह दहलीज पर पाव रख रहा था।

एक मायने में सत्यनारायण की कहानियाँ अलग अलग होकर भी एक ही हैं। टुकड़ो टुकड़ों में लिखे हुए आत्म कथ्य। सत्यनारायण की ज्यादातर कहानियों में पाठक का सामना एक ऐसे बेरोजगार युवक से होता है, जो हमारे सभ्य समाज में 'मिसफिट' है। एक अदद नौकरी पा लेना जिसका लक्ष्य नही है, बल्कि जो चारों तरफ काटों का उगता हुआ जंगल है, उसे तहस नहस कर देने की 'भूख' जिसके भीतर है। शहर की लम्बी सड़कों पर अपनी 'फटी जेबों' मे हाथ डाले घूमता हुआ यह नायक इससे परे बार बार अपने भीतर की उम्मीद से जगमगाता है और पाठक के मन मे जीने की अदम्य लालसा पैदा करता है।

इस 'अद्भुत' नायक के पास लडने के लिए सिर्फ अपने 'कमाए' हुए शब्द है। एक ऐसी 'भाषा' जो शिराओं मे बहते रक्त और अपनी धरती मे उठती हुई महक से बनती है।

कृष्ण कल्पित

आवरण : सुरेन्द्र जोशी।
('काठ होते हुए लोग' शृंखला का एक चित्र)